यशपाल की कहानियों में मध्यवर्ग

मास्टर आफ फिलासफी उपाधि के लिए
प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध

सुजाता माथुर

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

1983

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
भारतीय भाषा केन्द्र

न्यू मेहरौली रोड
नई दिल्ली : 110067

प्रमाणित किया जाता है कि कुमारी सुजाता माथुर द्वारा प्रस्तुत "यशपाल की कहानियों में मध्यवर्ग" शीर्षक लघु शोध-प्रबन्ध में प्रयुक्त सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा अन्य विश्वविद्यालय में इससे पूर्व किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है । यह सर्वथा मौलिक है ।

(डा0(श्रीमती) सावित्री चन्द्र "शोभा")
अध्यक्षा
भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

(डा0(श्रीमती) सावित्री चन्द्र "शोभा")
शोध-निर्देशिका
भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

विषय - सूची

	पृ० संख्या
भूमिका :	(क) से (ङ)
प्रथम अध्याय :	
मध्यवर्ग की अवधारणा और भारत में उसका विकास	1–21
द्वितीय अध्याय:	
स्वतंत्रतापूर्व कहानी-साहित्य और मध्यवर्ग	22–35
तृतीय अध्याय :	
यशपाल की कहानियाँ (मध्यवर्गीय पुरुष)	36–53
चतुर्थ अध्याय :	
यशपाल की कहानियाँ (मध्यवर्गीय नारी)	54–62
पंचम अध्याय :	
उपसंहार	63–82
ग्रन्थ-सूची	

भूमिका

यशपाल प्रेमचन्दोत्तर युग के एक समर्थ साहित्यकार हैं। प्रेमचन्द की अंतिम कहानियों में समाजवादी विचारधारा की जो भूमि प्राप्त होती है वैसी ही भूमि हमें यशपाल के यहाँ भी प्राप्त होती है। उन्होंने प्रेमचन्द की परम्परा और विरासत की न केवल रक्षा की है, उसे विकसित भी किया है। प्रेमचन्द की परम्परा में उन्होंने वह एक युग की पीढ़ी की भूमिका होने के साथ-साथ महत्वपूर्ण भी है।

यशपाल का लेखन-काल 1936 से लेकर 1968 तक का विस्तृत काल है, जिसमें मनोवैज्ञानिक कहानी, यथार्थवादी या समाजवादी कहानी और फिर स्वतंत्रता के पश्चात् का "नयी कहानी" आन्दोलन भी प्रारंभ हो जाता है।

यशपाल ने जब कहानी-लेखन प्रारंभ किया यानी सन् 36 के आस-पास, पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के द्वारा भारत का जन-मानस विदेश में हो रहे राजनीतिक और वैचारिक आन्दोलनों से परिचित होने लगा था। उसके दिमाग में अपने देश के वर्तमान और भविष्य को लेकर नए-नए विचार उठने लगे थे। उसने अंग्रेजों की भारत-विरोधी नीतियों पर भी विचार करना प्रारंभ कर दिया था, उसे समझ आने लगा था कि अंग्रेजी शासन भारत का विकास के नाम पर शोषण कर रहा है और वह भारत को सदा के लिए अपना गुलाम ही बनाए रखना चाहता है। उसने यह भी देखा कि पिछड़े हुए जारशाही रूस के लोगों ने ज़ार से विद्रोह किया और अपने देश पर उनका अपना शासन हो गया- यानी वहाँ जन-प्रजातन्त्र शासन है, मनुष्यों को स्वाभाविक अधिकार है और

स्वतंत्रता है । इसका कारण है वहाँ की समाजवादी शासन-व्यवस्था । यानी मार्क्सवादी समाजवादी विचारधारा क्या है और उसके परिणाम क्या हैं, यह सब भारत का बुद्धिजीवी ही नहीं साधारण जन भी जान चुका था ।

लेखन के क्षेत्र में आने से पूर्व यशपाल भी इस विचारधारा की ओर आकृष्ट हुए थे और वह भी एक ऐसे भारत का सपना देखते थे जिसमें वर्ण, जाति, क्षेत्र के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होगा, जहाँ प्रत्येक मनुष्य को समानता का अधिकार प्राप्त होगा । यही कारण है कि स्वतंत्रता आन्दोलन में उन्होंने समाजवादी राजनीतिक क्रांतियों में सक्रिय भाग लिया । जेल में उन्होंने इस विचारधारा का और भी गहन अध्ययन किया और फिर साहित्य रचना का काम शुरु किया । इस क्षेत्र में भी स्वाभाविक रूप से इनका झुकाव प्रगतिशील साहित्य से रहा या यों भी कहा जा सकता है कि यशपाल प्रगतिशील आन्दोलन की ही उपज हैं ।

यों तो यशपाल ने उपन्यास, कहानी, निबन्ध आदि गद्य की सभी विधाओं में लिखा है किन्तु कहानियों में सामाजिक यथार्थ के वह पहलू भी आ गए हैं जो उनके उपन्यासों में रह गए हैं । उनकी कहानियों में राजनीतिक सामाजिक आदि सभी तरह के विषय हैं किन्तु अधिकतर कहानियों में जीवन के विविधतापूर्ण यथार्थ, उसके मध्य रहने वाले मनुष्य के अंतरंग और बहिरंग जीवन पर विचार किया गया है । यशपाल मार्क्सवाद के प्रति एक प्रतिबद्ध कलाकार हैं इसलिए वह प्रायः समाज से जुड़कर चले हैं ।

हमारा समाज मुख्य रूप से तीन वर्गों में बंटा है -- उच्च वर्ग, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग । मध्यवर्ग ही वह वर्ग है जिसमें समाज का बुद्धिजीवी रहता है इसलिए लेखक, विचारक, साहित्यकार प्रायः इसी वर्ग से आते हैं । अपने परिवेश उसकी समस्याओं और व्यवहारों को वह अधिक अच्छी तरह जानते-समझते

है इसलिए प्राय: इसी वर्ग की समस्याएं और चरित्र साहित्य में भी स्थान पाते हैं। यशपाल के साथ भी लगभग यही बात है इसलिए उनके साहित्य में मध्यवर्ग प्रधान विषय रहा है। हमारे प्रस्तुत लघु-शोध प्रबन्ध में अध्ययन का विषय यही है कि यशपाल की कहानियों में मध्यवर्ग का चित्रण किस प्रकार हुआ है ?

मध्यवर्ग को विषय बनाने का एक अन्य कारण यह भी है कि यद्यपि भारत में मध्यवर्ग का उदय और विकास औद्योगीकरण और पूंजीवाद की स्वाभाविक विकास-प्रक्रिया का परिणाम नहीं है फिर भी यह समाज का एक महत्वपूर्ण तबका है। समाज का बुद्धिप्रधान वर्ग होने के कारण राष्ट्र और समाज के विकास के लिए भी यही चिंतित रहता है तथा इसी के प्रयत्नों से यह विकास सम्भव भी है। विधवा विवाह आदि सुधारों का समर्थन और बाल-विवाह आदि जैसी कुरीतियों का विरोध इसी वर्ग ने किया था, भारत का स्वाधीनता आन्दोलन भी प्रमुखतया इसी वर्ग पर आधारित था -- इसी वर्ग से आन्दोलनकारी आए और इसी वर्ग से नेता। किन्तु जहां इस वर्ग का यह उज्ज्वल पक्ष है वहीं उसका एक अन्य पक्ष भी है जिस पर विचार किया जाना चाहिए। राजनीति और समाज सुधार आन्दोलनों के अलावा सामाजिक क्षेत्र में इसकी क्या भूमिका रही-- इसे जानने के लिए हमने प्रथम अध्याय में इसके उदय, इसकी संरचना, स्वरूप और विकास, अन्य देशों से भारतीय मध्यवर्ग की विभिन्नता तथा इसकी समस्याओं पर विचार किया है।

दूसरे अध्याय में विचार का विषय यह है कि यशपाल के लेखन-काल से पूर्व और लेखन-काल में जो विभिन्न साहित्यिक आन्दोलन हुए उनकी मुख्य विशेषताएं क्या रहीं और उनके प्रमुख कहानी लेखकों के विषय और क्षेत्र क्या रहे, समाज से जुड़कर या मध्यवर्ग की समस्याओं को लेकर उनका दृष्टिकोण क्या रहा ? दरअसल हिन्दी कहानी की विकास-यात्रा है

विभिन्न मोड़ों का अध्ययन करने पर ही हम किसी पुरुष लेखक के लेखन के विषय में बात कर सकते हैं और अन्य लेखकों से उसकी भिन्नता या साम्य उद्घाटित कर सकते हैं ।

तीसरा और चौथा अध्याय यशपाल की कहानियों में मध्यवर्ग की समाज से संबद्ध हैं । इनमें मध्यवर्गीय पुरुष और मध्यवर्गीय नारी की सामाजिक स्थिति, व्यवहार और समस्याओं के संदर्भ में यशपाल की कहानियों को परखा गया है । यशपाल की लगभग 200 कहानियां उनके 17 कहानी-संग्रहों के माध्यम से प्रकाश में आ चुकी हैं जिनमें समाज में होने वाले अत्याचारों समाज की विभीषिका, कुत्सता पर, धर्म के नाम पर किए जाने वाले ढकोसलों, अन्धविश्वासों और आचरण पर तीखे प्रहार किए गए हैं । इन्हीं कहानियों में मध्यवर्गीय पुरुषों और स्त्रियों के वर्गीय चरित्र भी उभरकर आए हैं । पुरुषों के अत्याचार, अहम्‌पूर्ण व्यवहार और नारी की पराधीनता विवशता के मार्मिक और यथार्थपूर्ण चित्रण के साथ ही यशपाल ने ऐसे नारी पात्रों की भी रचना की है जो अत्याचारों, अन्याय और शोषण के खिलाफ विद्रोह करती हैं, वह स्त्रियां पराधीन नहीं हैं, अपने पैरों पर खड़ी हैं, अपना भला-बुरा जानती हैं इसलिए अपना जीवन स्वयं जीती हैं । इन कहानियों में यशपाल की नारी विषयक मान्यताएं स्पष्ट होती हैं ।

पांचवें और अंतिम अध्याय में यशपाल से सम्बद्ध कुछ ऐसे विवादास्पद विषयों पर विचार किया गया है । स्वतंत्रतापूर्व के जिस मध्यवर्ग को यशपाल ने विषय बनाया उसकी समस्याएं और स्वरूप तो उनकी कहानियों में साफ तौर पर आया है लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात् मध्यवर्ग की समस्याओं और उसके स्वरूप में कुछ भारी परिवर्तन आया जिसने समाज ही नहीं साहित्य को भी प्रभावित किया । "नयी कहानी " आन्दोलन का तो प्रमुख विषय ही मध्यवर्ग बना । यशपाल का लेखन काल लगभग सन् 68 तक का है इसलिए यहां हमने "नयी कहानी " और यशपाल " के मध्य संबंधों पर भी थोड़ा विचार किया है । इसके बाद यशपाल की कला सम्बन्धी मान्यताओं पर विचार

किया गया है । यशपाल प्रतिबद्ध कलाकार थे इसलिए उनका साहित्य मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित है किन्तु उसके पक्ष और विपक्ष में उनपर अनेक प्रकार के आरोप लगाए गए हैं, उनपर भी कुछ विचार किया गया है । और अन्त में उनकी मध्यवर्ग से इतर कुछ कहानियों की भी चर्चा की गई है ।

यानी यशपाल की कहानियाँ और उनकी विचारधारा को लेकर उनका थोड़ा मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है ।

प्रस्तुत विषय का चुनाव करने, तथ्यों का संकलन करने, अध्ययन करने तथा कार्य को सफलतापूर्वक पूरा कर सकने में मेरी शोध निर्देशिका डा० श्रीमती सावित्री चन्द्र 'शोभा' का कुशल मार्गदर्शन मुझे प्राप्त हुआ जिसके बिना यह कार्य सम्भव ही न हो पाता । उनके स्नेह और परामर्श से ही यह कार्य पूरा हो सका, उनके प्रति केवल आभार प्रकट करना उचित नहीं । मेरे मित्रों और सहयोगियों ने भी विषय को समझने, अध्ययन सामग्री और पुस्तकें जुटाने में तथा विषय को वर्गीकृत करने में उपयोगी परामर्श दिया जिसके लिए मैं उनकी बहुत आभारी हूं ।

नई दिल्ली

7 जुलाई, 1983

सुशीला माथुर

प्रथम अध्याय

मध्यवर्ग की अवधारणा और भारत में उसका विकास

प्रथम अध्याय

मध्यवर्ग की अवधारणा और भारत में उसका विकास

समाज के सन्दर्भ में चर्चा करते ही हमारे सम्मुख समाज के विभिन्न तबकों का विचार आता है । आज के समाज में व्यक्ति विभिन्न तबकों या वर्गों में बंट गए हैं यानि एक व्यक्ति का वर्ग-निर्धारण उसकी आर्थिक सम्पन्नता या विपन्नता पर निर्भर करता है । आर्थिक भिन्नता इस कारण होती है कि किसी के पास अधिक ज़मीन-जायदाद होती है, किसी के पास कम, जिसके पास अधिक साधन-सम्पन्नता होती है उसे उच्च वर्ग से संबद्ध माना जाता है और जो साधन-सम्पत्ति हीन व्यक्ति होता है उसे निम्न वर्ग से संबद्ध माना जाता है । उच्च वर्ग दूसरे शब्दों में वह है जो शोषण करता है और निम्न वर्ग-जिसका शोषण किया जाता है ।

दरअसल "धन, आय , व्यावसायिक स्तर, सामुदायिक शक्ति, दल की विशिष्टता, उपभोग का स्तर और पारिवारिक पृष्ठभूमि "[1] व्यक्ति को किसी एक वर्ग में प्रतिष्ठित करते हैं । यानि समाज में कोई भी व्यक्ति "आय, सम्पत्ति, जीविका, रहन-सहन के स्तर, शिक्षा, उसकी व्यक्तिगत शक्ति जिसके आधार पर वह समाज के अन्य व्यक्तियों के बीच अपनी विशिष्ट स्थिति का निर्माण करता है "[2] के द्वारा जाना जाता है ।

1- जोरडन, मिल्टन एम० : सोशल क्लास इन अमेरिकन सोसाइटी, पृ०-3

2- इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका : भाग पांच

मार्क्स का कहना है कि आदिम समाज में वर्ग-भावना या श्रेणी-भेद नहीं था क्योंकि लोग केवल अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही उत्पादन करते थे । किन्तु धीरे-धीरे उत्पादन बढ़ने से लोगों ने अपनी-अपनी सम्पत्ति बनाना प्रारम्भ कर दिया तभी से वैयक्तिक सम्पत्ति की भावना समाज में आई और इस भावना के फलस्वरूप व्यक्ति वर्गों में बंट गए । वर्गों में इस प्रकार बंट जाने से अब वर्गों में आपसी संघर्ष प्रारंभ हो गया । इसी वर्ग-संघर्ष को शाश्वत् मानकर मार्क्स ने लिखा, "अभी तक घटित सभी समाजों का इतिहास वर्ग-संघर्ष का ही इतिहास है ।"[1]

मार्क्स ने समाज में तीन वर्गों की चर्चा की, पहले वर्ग को उन्होंने "बुर्जुआ" या शोषक वर्ग कहा, दूसरे को "प्रोलितेरियत" या शोषित वर्ग कहा -- इन दोनों वर्गों के संघर्ष से एक तीसरा वर्ग उत्पन्न हुआ जिसे उन्होंने "मध्यवर्ग" कहा । इसी मध्यवर्ग के सन्दर्भ में हम आगे बात करेंगे, जो औद्योगिक विकास तथा नगरीय सभ्यता के बढ़ने से और पूंजीवाद के आगमन से पूंजीपति और श्रमिक वर्ग के मध्य उत्पन्न हुआ ।

परिभाषा एवं स्वरूप: मध्यवर्ग के नामकरण के पीछे केवल यही कारण नहीं था कि दो वर्गों के मध्य उत्पन्न हुआ इसलिए "मध्यवर्ग" है, दरअसल मध्यवर्ग एक ऐसा वर्ग है जो मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी कारणों से अन्य वर्गों से भिन्न है । चैम्बर्स डिक्शनरी में मध्यवर्ग की परिभाषा करते हुए कहा गया है --" मध्यवर्ग में वे सभी व्यक्ति आ जाते हैं जो अभिजात्य वर्ग और श्रमिक वर्ग के मध्य होते हैं ।"[2] आक्सफोर्ड इलस्ट्रेटिड डिक्शनरी के अनुसार ,"मध्यवर्ग समाज के उच्च और निम्न श्रेणी के बीच का वह वर्ग है जिसमें व्यावसायिक , व्यापारिक अथवा क्रय-विक्रय करने वाले लोग शामिल हैं ।"[3]

1- मार्क्स, एंगेल्स : कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र, पृष्ठ-43

2- चैम्बर्स डिक्शनरी- ट्वेन्टियथ सेंचुरी

3- आक्सफोर्ड इलस्ट्रेटिड डिक्शनरी ।

वेब्सटर न्यू ट्वन्टियथ सेंचुरी डिक्शनरी के अन्तर्गत मध्यवर्ग की विस्तृत परिभाषा देते हुए कहा गया है, "मध्यवर्ग के अन्तर्गत प्रोलितेरियत, छोटे व्यवसायों के स्वामी, पेशेवर लोग, बाबू वर्ग और सम्पन्न किसान शामिल होते हैं।

हिन्दी साहित्य कोश : में मध्यवर्ग की परिभाषा के अन्तर्गत उसकी विशेषताओं को और उसमें किन्हें शामिल करेंगे उन व्यक्तियों के स्वरूप की भी चर्चा की गई है -- "मध्यवर्ग सामन्तवादी व्यवस्था में नहीं पाया जाता, क्योंकि उस समय ज़मीदार तथा किसान का सीधा सम्बन्ध था, किन्तु पूंजीवादी व्यवस्था ने समाज को इतना जटिल बना दिया है कि एक मध्यवर्ग की भी आवश्यकता हुई जो इस जटिल व्यवस्था के संघटन-सूत्र को संभाल सके। इस वर्ग में नौकरी-पेशा, शिक्षक, क्लर्क और अन्य साधारण लोग आते हैं। मध्यवर्ग विशेषत: बुद्धि प्रधान वर्ग माना जाता है और सामाजिक क्रांति के प्राय: समस्त विचारों का सर्जन मध्यवर्ग में होता है।"[1]

एस० आर० ग्रैटन : ने मध्यवर्ग की परिभाषा करते हुए लिखा, "मध्यवर्ग का नाम ही समाज के स्तर की ओर संकेत करता है। यह वर्ग आज भी मौजूद है और उसकी अपनी विशिष्टताएं हैं।"[2] इसी मध्यवर्ग के संबंध में अरस्तू ने लिखा, "सभी राज्यों में तीन प्रकार के व्यक्ति मिलते हैं -- एक वर्ग बहुत धनी है, दूसरा बहुत ही निर्धन है और तीसरे प्रकार के व्यक्ति मध्यम श्रेणी के हैं।"[3]

डा० नासिर अहमद खान : के शब्दों में, "उनके जीवन-निर्वाह के ढंग के आधार पर उच्च और निम्न वर्गों से उन्हें पृथक किया जा सकता है। उनके अपने पूर्वाग्रह, रुचियां तथा अरुचियां, शिष्टाचार, रीति-रिवाज और आचार-विचार हैं जिन्हें स्पष्ट न होते हुए भी स्पष्ट किया जा सकता है।"[4]

1- हिन्दी साहित्य कोश : सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ-564
2- दि इगलिश मिडिल क्लासेज़ : आर० एस० ग्रैटन, पृष्ठ-1
3- सिंह, मंजुलता : क्लास स्टेट, एण्ड पावर -> बेन्डिक्स एण्ड लिपसेट से, हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग : से उद्धृत, पृष्ठ-5
4- मिडिल क्लासेज इन इंडिया : डा० नासिर अहमद खान, पृष्ठ-15

डा० मंजुलता सिंह मानती हैं कि "मध्यवर्ग का स्वरूप अन्य वर्गों की तुलना में अधिक जटिल और विस्तृत है इसलिए इसका सम्यक अध्ययन अन्य वर्गों की अपेक्षा कठिन है।"[1] वह आगे लिखती हैं, "मध्यवर्ग इतना वृहत् है कि कहीं उच्च वर्ग के निकट दिखाई देता है और कहीं निम्न वर्ग के साथ, पर वस्तुत: इसकी स्थिति त्रिशंकु जैसी है। वंश, आय, जीविका, शिक्षा, रहन-सहन, अभिरुचि एवं कौटुम्बिक सामाजिक मर्यादा के अनुसार मध्यवर्ग समाज के अन्य वर्गों से अलग पहचाना जा सकता है।"[2]

डा० बी०बी० मिश्र ने भारतीय मध्यवर्ग की परिभाषा देते हुए लिखा, "ब्रिटिश राज के परवर्ती काल में जो मध्यवर्ग संवर्धित हुए, वे उद्योग के विकास की देन न होकर माध्यमिक या उच्चतर शिक्षा की उपज थे। अत: मध्यवर्ग में अधिकांश बुद्धिजीवी हुआ- सिविल कर्मचारी, अन्य वेतन भोगी कर्मचारी तथा विधा के पेशे में लगे लोग।"[3] इनके साथ ही इस वर्ग में "सौदागरों, एजेंटों और आधुनिक व्यापारिक फर्मों के मालिक और संचालक सम्मिलित हैं। इनमें शीर्ष स्थान के वे लोग सम्मिलित नहीं किए जाते जिनका सम्बन्ध थोक बिक्री, व्यापार निर्माण अथवा वित्तीय मामलों से है। वेतन पाने वाले कार्यकर्ता जैसे मैनेजर, निरीक्षक, सुपरवाइजर और तकनीकी कर्मचारी तथा बैंक उद्योगों एवं अन्य व्यापारी संस्थाओं में बैंकिंग का काम करने वाले लोग आते हैं। इनके अलावा विभिन्न संस्थाओं में उच्च वेतन पाने वाले अधिकारी, वाणिज्य के चैम्बरों और व्यापारिक एसोसिएशनों से लेकर राजनीतिक संगठनों, व्यापारिक संघों, दानशील शैक्षणिक संस्थाओं और सांस्कृतिक निकायों में काम करने वाले लोग मध्यवर्ग के अन्तर्गत आते हैं। उच्च न्यायालयों के न्यायधीशों तथा सचिवों को छोड़कर सचिवालयों के कर्मचारी

1- सिंह मंजुलता : हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग : पृष्ठ-12

2- --- वही --- ,, ,, भूमिका

3- मिश्र बी०बी० : दि इण्डियन मिडिल क्लासेज़ : पृष्ठ-343।

भी इसी वर्ग में परिगणित होते हैं। इनके अतिरिक्त मुख्य व्यवसायों के अवैतनिक कार्यकर्ता, वकील, डाक्टर, प्रवक्ता, प्राध्यापक, लेखक, पत्रकार, संगीतज्ञ तथा अन्य कलाकार, धार्मिक उपदेशक और पुजारी भी इसी वर्ग के सदस्य होते हैं। इनके अतिरिक्त जमींदारी में लगे हुए वेतन पाने वाले कर्मचारी, विश्वविद्यालयों अथवा इसी स्तर की संस्थाओं में पूरे समय कार्य करने वाले वेतन प्राप्त विद्यार्थी, माध्यमिक स्कूलों के उच्च स्तर के कार्यकर्ता भी मध्यवर्ग की विस्तृत सीमा में आते हैं।"[1]

डा० बलजीत सिंह अपने अध्ययन के दौरान पाते हैं कि " मध्यवर्ग में केवल नियोजक ही नहीं अपितु कई कार्यकर्ता होते हैं जिनमें कुछ स्वतंत्र अथवा आत्मनिर्भर काम करने वाले, कुछ व्यापारी और ग्राहक, कुछ सम्पन्नशाली और कुछ निर्धन होते हैं। इस वर्ग के लोगों की आय औसत दर्जे की होती है तथा कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जिनकी कोई आय नहीं होती।"[2]

इसी तरह इस वर्ग की संरचना बताते हुए यशपाल भी लिखते हैं " मध्यम श्रेणी अनिश्चित स्थिति के लोगों की बदशुक्ल खिचड़ी है। कुछ लोग मोटरों और शानदार बंगलों का व्यवहार कर विनय से अपने आप को इस श्रेणी का अंग बनाते हैं। दूसरे लोग मजदूरों की सी असहाय स्थिति में रहकर भी केवल सफेदपोश और शिक्षित होने के बल पर इस श्रेणी का होने का दावा करते हैं। देश की राजनीति और समाज-सुधार की जितनी चिन्ता इस श्रेणी में रहती है उतनी न तो अपने विस्तृत स्वार्थ की चिन्ता में व्यस्त रहने वाली उच्च श्रेणियों को और न रोटी के टुकड़े की चिन्ता से कभी मुक्ति न पाने वाली निम्न श्रेणियों को है।"[3]

1- मिश्र बी०बी० : दि इण्डियन मिडिल क्लासेज़ : पृष्ठ-12-13।

2- सिंह डा० बलजीत : अरबन मिडिल क्लास -क्लाइम्बर्स, पृष्ठ-3।

3- यशपाल : दादा कामरेड (उप०) : भूमिका।

मध्यवर्ग के उदय के कारण:

मध्यवर्ग का उदय समाज में क्यों और कैसे हुआ, इस सन्दर्भ में लेनिन ने लिखा कि उद्योगों की आवश्यकताओं के कारण सारे राष्ट्रों में अनिवार्यत: सदा नए सिरे से नए-नए 'बिचले तबके' सृजित होते रहते हैं। मार्क्स-एंगेल्स ने लिखा है कि 'मध्ययुग के भू-दासों से प्रारंभिक शहरों के अधिकार-पत्र प्राप्त बर्गर पैदा हुए थे। इन्हीं से आगे चलकर प्रथम पूंजीवादी तत्वों का विकास हुआ है।'[1] इनके बाद क्रमश: व्यापारिक पूंजी पर आधारित व्यापारी मध्यवर्ग, उत्पादक (मैन्युफैक्चरिंग) मध्यवर्ग और औद्योगिक मध्यवर्ग का विकास हुआ। इसके अतिरिक्त पूंजीवाद के द्वारा विकसित नवीन शहरों के विभिन्न वर्गों, पूंजीवादी शिक्षा और प्रशासन के कार्यों से जुड़े लोगों ने मध्यवर्ग के निर्माण में सहयोग दिया। यानि पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली के ऐतिहासिक विकास के साथ मध्यवर्ग का भी ऐतिहासिक विकास होता है। पूंजीवाद के एक विश्व-व्यवस्था के रूप में प्रतिष्ठित होने के पीछे एकमात्र कारण यह था कि पूंजीपति राष्ट्रों को उपनिवेशों से भरपूर कच्चा माल और तैयार माल को बेचने के लिए बाज़ार मिला, इस तरह इज़ारेदारी पूंजी का विकास हुआ और इसी माध्यम से पूंजीपति वर्ग का तथा पूंजीवाद का विकास हुआ।

पूंजीवाद एक विश्व-व्यवस्था अवश्य है किन्तु विभिन्न राष्ट्रों में उसका असमान विकास हुआ क्योंकि उपनिवेशों में पूंजीवाद के विकास की स्थितियां ऐतिहासिक कारणों से भिन्न थीं। उपनिवेशों में साम्राज्यवादियों ने पूंजीवाद को थोपा था वह क्रमिक इतिहास की विकास प्रक्रिया का परिणाम नहीं था अपितु साम्राज्यवादियों के लिए सस्ते श्रम, भरपूर कच्चे माल की प्राप्ति और अपने माल की खपत के लिए बाज़ार तैयार करने की

1- मार्क्स, एंगेल्स : संकलित रचनाएं (हिन्दी) खण्ड-1, भाग-1, पृ0-32

नीति का परिणाम था । यही वजह है कि उपनिवेशी राष्ट्रों में देशी पूंजीवाद का विकास या तो अवरुद्ध रहा है या उसे विकृत कर दिया गया है । विकृत पूंजीवाद से ग्रस्त देशों में विकसित होने वाले मध्यवर्ग का चरित्र और स्वरूप साम्राज्यवादी नीतियों के इर्द-गिर्द निर्मित हुआ है । दरअसल जहां-जहां साम्राज्यवाद की यह नीतियां लागू की गईं वहां का अपना एक निश्चित समाज था, एक निश्चित अर्थ-व्यवस्था थी और वहां के विभिन्न वर्गों का एक अपना समीकरण था तथा विकास की अपनी निर्धारित दिशाएं थीं लेकिन नीतियां थोपे जाने के परिणाम स्वरूप यह सब गड्बड़ा गया ।

यही कारण है कि भारत में भी पूंजीवाद अर्द्ध-विकसित रहा और उससे उत्पन्न मध्यवर्ग का विकास भी अमेरिका, रूस, इंग्लैंड या अन्य किसी पूंजीवादी राष्ट्र के समान नहीं हो पाया ।

भारत में आधुनिक मध्यवर्ग का उदय और विकास:

भारत में आधुनिक मध्यवर्ग का उदय और विकास अन्य राष्ट्रों की ही तरह औद्योगीकरण और व्यापार के रूप में पूंजीवाद के आगमन के साथ ही हुआ । और भारत में पूंजीवाद के आगमन का दायित्व अंग्रेजी साम्राज्य पर है । अंग्रेजों ने जब भारत में अपनी जड़ें जमानी प्रारंभ की उस समय तक भारत में एक अपनी ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था थी और भारतीय ग्राम इस दृष्टि से इकाई हुआ करते थे लेकिन अंग्रेजों ने इस अर्थ-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन कर दिया । अंग्रेजों के आने से पूर्व भारत में समाज की क्या स्थिति थी इस सन्दर्भ में डा० सतीश चन्द्र के विश्लेषण को देखा जा सकता है कि "एक सिरे पर मुगल सम्राट तथा भूस्वामी हैं और दूसरे पर पाही और मुजारियन, और इन दोनों के बीच के तबके को मध्यवर्ग कहा जा सकता है ।"[1] इसी सन्दर्भ में डा० नासिर अहमद खान भी लिखते हैं,

---

1- डा० सतीश चन्द्र :उत्तर मुगलकालीन भारत: (सामा०,आर्थिक और शासनात्मक पृष्ठभूमि) पृष्ठ-15

°समाज के उच्च स्तरके व्यक्तियों में राजगुरु, क्षात्रिय राजा और उनके अभिभावक सम्मिलित थे । इन व्यक्तियों में ब्राह्मण, अध्यापक, उपदेशक, क्षात्रिय, शूरवीर और राजनीतिक नेता भी थे । कुछ ऐसे व्यक्ति भी थे जो शासन-व्यवस्था में सहायता करते थे । ऐसभी व्यक्ति मध्यवर्ग के ही थे । इन व्यक्तियों में वैश्य जाति के लोग भी शामिल थे जो विशेषकर सौदागर पूंजीपोषक और औद्योगिक थे ।° एक अन्य स्थान पर यह लिखते हैं -- °जागीरदार, पंचहजारी और बूर्जुआ वर्ग के भारतीयों ने उच्च स्तर के वर्ग का निर्माण किया । उनके प्रबन्धकों, सलाहकारों, राजस्व अधिकारियों, प्रशासकों, सौदागरों तथा व्यापारियों ने मध्यवर्ग बनाया ।°[1]

जहां तक ब्रिटिश कालीन भारत का सवाल है उसकी वर्गीय स्थिति का विश्लेषण करते हुए ताराचन्द लिखते हैं, °1813 तक गए भारत की मुख्य विशेषताएं उभरकर सामने आ गई थीं । विदेशियों के छोटे से धनिक तंत्र के हाथ में शक्ति, धन और रुतबे का एकाधिकार था और वे सरकार की सारी जिम्मेदारियां अपनी मुट्ठी में रखे हुए थे । वे किसी भी प्रकार से देश के लोगों को शक्ति या जिम्मेदारी का हिस्सा नहीं देना चाहते थे । ये लोग सामाजिक मंच पर छाए हुए थे । शासक धनिकतन्त्र की ताकत और स्थायित्व मुख्यत: अंग्रेजों के पराक्रम और शक्ति पर और भारतीयों के अनैक्य और दब्बूपन पर आधारित थे । भारतीय समाज की हालत ये थी कि वह लाखों गांवों में रहने वाली विराट जनता से बना था, उसके रहन-सहन का स्तर बहुत ही निम्न कोटि का था । गरीबी, बीमारी, अज्ञान और कुसंस्कार उसके जीवन की दु:खमय विशेषताएं थीं । ब्रिटिश शासन में उनकी संख्या बढ़ती गई पर उनकी आर्थिक स्थिति गिरती गई ।

विदेशी शासकों तथा भारतीय जनता के बीच मध्यवर्ग था जिसमें भूसम्पत्ति वाले व्यापारी और पेशेवर लोग आते थे । यद्यपि प्रारंभ में उसमें कोई सर्वांगीण एकता न थी फिर भी भूसम्पत्ति वाले वर्ग और बुद्धिजीवी

1- डा0 नासिर अहमद खान: मिडिल क्लासेज इन इण्डिया : पृ0-3-4

वर्ग में यानि स्वतंत्र पेशा करने वाले सरकारी नौकरों में बहुत समानता थी । बहुत से ज़मींदार भी व्यापार में लगे हुए थे, वे मध्यवर्ग में इस अर्थ में थे कि उनकी कोई कट्टर जातियां नहीं बनी थीं, फिर भी इस वर्ग में ऊंची जाति के लोगों को ही महत्व प्राप्त था । उनकी गतिशीलता थी जिससे वह अपना पेशा और कार्य बदल सकते थे । प्रारम्भ में उनकी संख्या कम थी पर वे बढ़ते गए और आपस में घुलते-मिलते गए । भारत के विभिन्न भागों में विभिन्न समुदायों और समूचे वर्ग की सापेक्ष शक्ति एक जैसी न थी पर इसकी संख्या को देखते हुए समाज पर इनका प्रभाव बहुत ज़्यादा था इस वर्ग के अधिकांश पढ़े-लिखे लोग थे ।"[1]

इसके अतिरिक्त 18वीं सदी के अन्त तक आते-आते भारतीय राजनीति, सामाजिक जीवन, अर्थ-व्यवस्था आदि पर पश्चिम का गहरा प्रभाव पड़ने लगा । इसी समय भारत में पश्चिम से नए-नए विचारों का भी आगमन हुआ, यातायात की सुविधा हो जाने से आवागमन बढ़ने लगा यानि समाज में इस दृष्टि से भी परिवर्तन आना शुरू हुआ । इसका एक लक्षण यह भी था कि सामाजिक वर्गों का पुराना ऊंच-नीच का ढांचा टूटने लगा, यानि परम्परा से चला आ रहा जात-पांत के आधार पर किया गया वर्गों का विभाजन अब बेमानी होने लगा और उसी में से सामाजिक अर्थ-व्यवस्था के आधार पर नए समुदायों ने जन्म लिया । भारत में नए मध्यवर्ग के उदय और उसकी संरचना के विषय में ताराचन्द लिखते हैं कि उसमें वे लोग थे जो "यद्यपि धन, शिक्षा, पेशा और रोज़गार की दृष्टि से आपस में अलग थे, फिर भी उनमें ऐसी सामान्य विशिष्टताएं थीं जिनसे उनका वर्ग बनता था । इस वर्ग की नयी उच्चाकांक्षाएं थीं और उनमें व्यक्ति, समाज और राजनीति के सम्बन्ध में नई धारणाएं उत्पन्न हुईं ।

1- राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास : ताराचन्द (भाग-2) "19वीं सदी के आरंभ में मध्यवर्ग" पृष्ठ-142

इस नए वर्ग को (नवीन) मध्यवर्ग का नाम दिया जाता है ।"[1]

डा० बी०बी० मिश्र भारत में मध्यवर्ग के उदय में सहायक कारणों का उल्लेख करते हुए कहते हैं, "आधुनिक काल में भारत में नवीन मध्यवर्ग का उदय उन परिस्थितियों में हुआ जो ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन-काल में पनपी थीं । उस समय की सहायक परिस्थितियां सरकार का विनम्र एवं संवैधानिक चरित्र और कानून - व्यवस्था, निजी-सम्पत्ति की सुरक्षा कृषक वर्गों के निर्धारित अधिकार, शिक्षा का राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम शान्ति का वातावरण, रोज़गार एवं सामाजिक सुधारों की नीति और व्यापारियों के लिए स्वतंत्र व्यापार नीति थी ।"[2] ताराचन्द मानते हैं कि "ब्रिटिश न्याय और प्रशासन-पद्धति तथा अंग्रेजी शिक्षा ने भी इस वर्ग की संख्या बढ़ाने तथा इसमें एकता लाने में बहुत महत्वपूर्ण भाग अदा किया ।"[3] डा० एआर० देसाई आधुनिक भारतीय मध्यवर्ग के उदय के पीछे अंग्रेज़ों द्वारा चलाई गई शिक्षा-पद्धति का ही प्रमुख हाथ मानते हैं । वह लिखते हैं, "भारत में अंग्रेजी शासन द्वारा चलाई गई शिक्षा-पद्धति के फलस्वरूप शिक्षित मध्यवर्ग का जन्म हुआ । ... 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में और उसके बाद भी आधुनिक शिक्षण संस्थाओं की संख्या में अनवरत वृद्धि के कारण शिक्षित मध्यवर्ग की तादाद लगातार बढ़ती ही गई ।"[4]

अंग्रेज़ी सरकार शिक्षा का प्रचार तो अवश्य कर रही थी पर भारतीयों की शिक्षा के प्रति उनकी नीति यह थी कि "शिक्षा के द्वारा वे एक ऐसा वर्ग तैयार करना चाहते थे जो उन्हें भारतीय शासन-व्यवस्था को सम्भालने में

1- ताराचन्द : राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास (भाग-2) "19 वीं सदी के आरंभ में मध्यवर्ग", पृष्ठ-142 ।

2- डा०बी०बी० मिश्र: द इण्डियन मिडिल क्लासेज़ : पृष्ठ-69

3- भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास: ताराचन्द, पृ०-104(भाग-2)

4- एआर० देसाई : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि :पृष्ठ-158

मदद दे, जो भारत के आंतरिक स्रोतों के विकास में सहायक होकर ब्रिटेन में बने माल को आयात करने में सहायता दे ° मैकाले के शब्दों में °एक ऐसा वर्ग जो रक्त नस्ल व रंग में बेशक भारतीय हो किन्तु रुचि, दृष्टि, आदर्श और वैचारिक स्तर पर ब्रिटिश हो ।°[1] जैसा वर्ग ब्रिटिश चाहते थे वैसा वर्ग उस समय अंग्रेज़ी शिक्षा के परिणाम स्वरूप मध्यवर्ग के रूप में भारत में दिखाई भी देने लगा था । इसी संदर्भ में हुमायूं कबीर ने भी ब्रिटिश शासकों की शैक्षणिक नीति और मध्यवर्ग की आवश्यकता का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है, ° काफ़ी समय तक शासन व्यावसायिक लाभ को दृष्टि में रखकर किया जाता रहा । देश के साधनों का पूर्ण रूपेण शोषण करने के हेतु ब्रिटेन को ऐसे मध्यश्रेणी के मनुष्य-समुदाय की आवश्यकता थी जो उसके और भारतीय लोगों के बीच मध्यस्थ का कार्य कर सके । शासन-प्रबन्ध की आवश्यकता के सम्बन्ध में भी यही समस्या थी ।... परिणाम स्वरूप प्रबन्ध सम्बन्धी एक बड़े वर्ग का निर्माण हुआ जिसने अंग्रेज़ों को शासन प्रबन्ध और व्यापार में सहायता दी ।°[2] इस अंग्रेजी शिक्षा का मध्यवर्ग के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है । अंग्रेज़ी ने अंग्रेज़ी भाषा की मान्यता को भारतीयों के मन में इतना अधिक जमा दिया कि आज तक भी स्वतंत्र भारत में अंग्रेजी का मोह भारतीय मध्यवर्ग छोड़ नहीं पाया है ।

इस नई सभ्यता और शिक्षा के प्रचार के परिणाम स्वरूप भारतीय जन-जीवन में प्राचीन और नवीन मूल्यों का संघर्ष प्रारंभ हो गया । इस बात का अन्दाज़ा एक अंग्रेज़ अधिकारी चार्ल्स ग्रान्ट ने बहुत पहले ही लगा लिया था जब उसने लिखा था कि °अंग्रेज़ी शिक्षा भारतीयों के जीवन-मूल्यों और पुरानी आदतों को बदलने का सबसेउपयुक्त माध्यम होगी ।°

लेकिन शिक्षा और विभिन्न यूरोपीय प्रभाव ग्रहण करने के बावजूद भारत का मध्यवर्ग आर्थिक क्षेत्र में यूरोपीय बुर्जुआ वर्ग की भूमिका अदा नहीं

1- डा० बी०बी० मिश्र : द इण्डियन मिडिल क्लासेज़ : पृष्ठ-10-11

2- हुमायूं कबीर : इण्डियन हैरिटेज़ : पृष्ठ-102

कर सका । ऐसा इस कारण हुआ क्योंकि यूरोपीय मध्यवर्ग के अपने जीवन-मूल्य पूंजीवादी मूल्य संरचना से निसृत हैं । पश्चिम में यह वर्ग सामन्तवाद विरोधी संघर्ष में अस्तित्व ग्रहण करने वाला वर्ग है , वह औद्योगिक उत्पादन-प्रणाली से आवयविक रूप से जुड़ा है, उसकी मूल संरचना सामन्तवाद विरोधी है और पूंजीवादी मूल्यों से उसकी अस्तित्वपरक सख्ता है । जबकि भारतीय मध्यवर्ग ने अपने आरम्भिक दौर में साम्राज्यवाद का ही सहारा लेकर सामाजिक कुरीतियों से लड़ने की कोशिश की है और इसका एक बहुत बड़ा हिस्सा बाद तक साम्राज्यवादी शासन-व्यवस्था का प्रशंसक रहा । यह भी सही है कि इस वर्ग ने भारत में साम्राज्यवादी शासन-व्यवस्था के विरोध की अगुवाई की थी, चाहे पहले यह विरोध इस कारण रहा हो कि यह ऐसा शासन चाहता था जैसा अंग्रेज पूंजीपति वर्ग ब्रिटेन में कर रहा था ताकि इसके निहित स्वार्थ सिद्ध हो सकें । किन्तु फिर भी ताराचन्द के शब्दों में -- " राजनैतिक क्षेत्र में जनता में राष्ट्रीयता की भावना का विस्तार, राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन का संगठन तथा अन्त में देश को विदेशी शासन से मुक्त कराने का श्रेय इसी वर्ग को मिलना चाहिए ।"[1]

मध्यवर्गीय व्यक्ति का चरित्र और उसकी समस्याएं :

मध्यवर्गीय व्यक्ति का चरित्र भी एक खास किस्म का होता है । इस वर्ग के व्यक्ति प्राय: वे तनभोगी होते हैं क्योंकि इनके पास उत्पादन का कोई साधन नहीं होता इसलिए ये अपनी सेवाएं बेचकर जीते हैं -- इस दृष्टि से यह सर्वहारा या मजदूर के समान हो जाते हैं पर क्योंकि इनका श्रम बौद्धिक होता है शारीरिक नहीं इसलिए पूंजीपति के समीप भी होते हैं । दरअसल ऐसे लोग जो सरकारी और गैरसरकारी नौकरियों, शिक्षण संस्थाओं पत्रकारिता , साहित्य, कला और संस्कृति के क्षेत्र से सम्बन्धित हैं जैसे हाकिम,

---

1- ताराचन्द : राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास :पृ0-104(भाग-2)

वकील, डाक्टर, किरानी, प्रोफेसर, इंजीनियर, पत्रकार, साहित्यकार आदि मध्यवर्ग की रीढ़ समझे जाते हैं और ये विचार तथा भाव दोनों दृष्टियों से पूंजीपति और सर्वहारा से भिन्न हैं।

शिक्षित बेरोज़गारी:

अंग्रेज़ी शिक्षा का मध्यमवर्ग के चरित्र निर्माण और उसके विकास पर गहरा असर पड़ा। अब प्रत्येक मध्यवर्गीय युवक थोड़ी भी शिक्षा प्राप्त करके ऊंचे से ऊंचा पद प्राप्त करना चाहता है। खासकर छोटे शहरों और गांवों से आने वाले युवक आई० ए० एस० आदि परीक्षाएं उत्तीर्ण करके सीधे किसी बड़े पद को प्राप्त कर सुविधा सम्पन्न जीवन जीने का स्वप्न देखने लगते हैं। मध्यवर्गीय युवक की विडम्बना ही यह है कि उसकी आकांक्षाएं तो बेहद रहती हैं किन्तु निर्धारित लक्ष्य नहीं होता। जहां लक्ष्य निर्धारित रहता है वहां वह जी-तोड़ मेहनत भी करता है किन्तु जब परिणाम अनुकूल नहीं निकलता तो उसके सारे सपने धाराशायी हो जाते हैं। डिग्री होते हुए भी जब उसे अच्छी नौकरी नहीं मिलती तो वह बेकारी से जूझता रहता है क्योंकि शिक्षा ने उसके मन में यह झूठ भर दिया है कि पढ़-लिखकर वह सफेदपोशी की नौकरी ही करेगा। चाहे गांव या घर में पुश्तैनी धन्धा अपना लेने से भर पेट रोटी और साधन-सम्पन्नता मिल सकती है किन्तु शिक्षा प्राप्त करके अच्छी नौकरी पाना ही उसका एकमात्र लक्ष्य रह जाता है। मध्यवर्गीय माता-पिता भी पुत्र को शिक्षा इसलिए दिलवाते हैं कि वह शहर जाकर बड़ा आदमी बन जाए किन्तु यदि पढ़-लिखकर नौकरी करने की जगह वह वापस धन्धे में आ जाए तो उनका पैसा बरबाद ही हुआ समझा जाता है। यही कारण है कि युवक गांव वापस जा नहीं सकते और साथ ही किसी छोटी-छोटी नौकरी के लिए स्वयं को मानसिक रूप से तैयार नहीं कर पाते तथा बेकारी का संघर्षपूर्ण जीवन जीते रहते हैं।

नौकरी और शिक्षा को लेकर उत्पन्न यह समस्या आज भी वही विकराल रूप धारण किए हुए है । यही कारण है कि मध्यमवर्ग का युवक सुख-सुविधा-सम्पन्न जीवन के स्वप्न देखता है किन्तु वर्तमान पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था में उसके हालात् में कोई अन्तर नहीं आता । वह जैसे-तैसे कमाकर उदरपूर्ति भर का साधन जुटा पाता है ; मगर सुख सुविधापूर्ण जीवन या सभ्य मानवीय आवश्यकताएं उसके लिए दु:स्वप्न हैं ।[1] इसी कारण संत्रास, कुण्ठा, ऊब, उद्देश्यहीनता, टूटन, पीन गिरावट और घोर अवसाद ग्रस्तता आज के मध्यवर्ग के लक्षण हो गए हैं ।[2]

संयुक्त परिवार व्यवस्था का टूटना :

शिक्षा के प्रचार के फलस्वरूप भारतीय समाज में परम्परा से चली आ रही संयुक्त परिवार व्यवस्था भी टूटने लगी । इसका एक कारण यह था कि शिक्षित युवकों ने यह महसूस किया कि संयुक्त परिवार में रहने वाले व्यक्तियों की बौद्धिकता और महत्वाकांक्षा की प्रवृत्तियां प्राय: कुण्ठित हो जाती हैं । संयुक्त परिवार व्यवस्था में किसी भी एक व्यक्ति का व्यक्तित्व पूरी तौर पर विकसित नहीं हो पाता । व्यक्ति की समस्याओं आशा या आकांक्षा का कोई महत्व नहीं रह जाता, वह परिवार की गाड़ी खींचने में सहायक एक पुर्जा भर रह जाता है । जो व्यक्ति काम करता है वह उन लोगों का बोझ भी उठाता है जो कुछ काम नहीं करते । इस कारण वह सदा तनाव ग्रस्त रहता है यही कारण है कि परिवार में कभी-कभी कलह का वातावरण बन जाता है और जीवन दु:खपूर्ण हो जाता है । संयुक्त परिवार व्यवस्था के टूटने का एक अन्य कारण यह

1- विवेकी राय : स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य और ग्राम-जीवन, पृ०-29

2- --वही -- ,, ,, ,,

यशपाल के कहानी - संग्रह

	पुस्तक का नाम	मूल संस्करण	प्रयुक्त संस्करण
१	पिंजरे की उड़ान	१९३९	1976
२	वो दुनिया	१९६२	1977
३	ज्ञानदान	१९६३	1970
४	अभिशप्त	१९४४	1944
५	तर्क का तूफान	१९६६	1972
६	भस्मावृत चिनगारी	१९६६	1976
७	फूलो का कुर्ता	१९६९	1972
८	धर्मयुद्ध	१९५०	1961
९	उत्तराधिकारी	१९५१	1976
१०	चित्र का शीर्षक	१९५१	1952
११	तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ	१९५९	1965
१२	उत्तमी की माँ	१९५५	1974
१३	ओ भैरवी	१९५८	1976
१४	सच बोलने की भूल	१९६२	1972
१५	खच्चर और आदमी	१९६५	१९ 75
१६	भूख के तीन दिन	१९६८	१९ ६८
१७	लैम्प शेड	१९८०79	१९ 79 ~~80~~

है कि शिक्षित युवा घर का धन्धा छोड़कर नौकरी की तलाश में दूर शहरों में चला जाता है और त अपने परिवार से मिलने ही के लिए वह कभी-कभी आ पाता है । तु व्यक्ति के तनावों में तब भी कमी नहीं आती बल्कि घर से दूर नौ ी की तलाश में वह अपनी पत्नी और बच्चे के साथ भटकता है, संयुक्त रिवार में वह और उसका परिवार काम न करने पर भी खाना खा सकता ा, उनके सिर पर छत भी थी किन्तु अब तो वह अकेला रह गया - रोटी र छत के लिए भी उसे ही संघर्ष करना पड़ेगा जो उसके तनावों में ज़ाफा ही करेगा ।

अर्थाभाव, धार्मिक अंध-विश्वास प्रदर्शन की समस्या :

मध्यवर्ग के व्यक्ति ने संयुक्त परिवार से अलग होकर एक तरह से परम्परा को तोड़ा है किन्तु विडम्बना यह है कि वह अभी भी रूढ़िग्रस्त मर्यादाओं और धार्मिक अन्धविश्वासों का दास है । परम्पराओं और विश्वासों को निबाहने के लिए जरूरत है एक मजबूत आर्थिक आधार की-- जबकि मध्यमवर्ग की तो मुख्य समस्या ही अर्थ के अभाव से उत्पन्न होती है । अर्थाभाव से त्रस्त रहने पर भी इस वर्ग की एक प्रवृत्ति प्रदर्शन करने की है । जो वास्तव में है वह छिपाकर कुछ और दिखने का ढोंग-- यही सब यह वर्ग करता है । यह वर्ग लोगों को दिखाने के लिए परम्पराओं को निबाहने का नाटक करता है और इस नाटक के लिए कुछ विशेष अवसर चुनता है जैसे शादी-विवाह , पुत्र-जन्म आदि । रीतों और परम्पराओं को उच्चवर्ग की तरह निबाहने के इस नाटक में यह वर्ग अपने आपको कर्ज़ में डुबा लेता है । इसके अतिरिक्त अपने आपको उच्चवर्ग के समकक्ष दिखाने की मानसिकता से ग्रस्त इस वर्ग में जिसकी भी माली हालत ज़रा अच्छी है वह खाने-पीने में चाहे कमी कर ले परन्तु कपड़े साज़ो-सामान, मोटर बंगला सब कुछ टिप-टाप रखता है ताकि देखने वाले पर सीधे यह प्रभाव

पड़े कि वह उच्चवर्ग से ताल्लुक रखता है । इस स्तर के परिवारों में उठने - बैठने, बात-व्यवहार में उच्चवर्ग की स्पष्ट नकल देखी जा सकती है । बैंक में चाहे कानी-कौड़ी न हो पर मित्रों और दावतों में खर्चने से यह बाज़ नहीं आते । इस प्रकार के व्यवहार का कारण यही है कि प्रदर्शन और व्यवहार की दौड़ में यदि वह उच्चवर्ग से आगे नहीं निकल सकते तो उसके बहुत पीछे भी नहीं रहना चाहते । जबकि उच्चवर्ग के साथ स्थिति यह है कि पूंजीवाद के विकास के परिणामस्वरूप उसकी सम्पन्नता और भी अधिक बढ़ गई है और पूंजी एकत्र करने के क्रम में अब वह निष्क्रिय हो गया है क्योंकि उससे ऊपर कोई स्थिति नहीं जिसे वह पाना चाहता हो । निष्क्रियता के कारण उसकी सुख-भोग की तृष्णा भी असीमित हो गई है । सरोज प्रसाद लिखती हैं कि 'सुख-भोग की एषणाओं की पूर्ति के जो उपकरण निकल रहे हैं उन्हें उच्चवर्ग के अनुकरण पर मध्यवर्ग भी ग्रहण करना चाहता है और परिणामस्वरूप दरिद्रतर होता जा रहा है ।[1]

मध्यमवर्ग से ऊपर के वर्ग की यह स्थिति है कि वह केवल पूंजी या अर्थ की चिन्ता करता है वैसे ही निचले यानि निम्नवर्ग की भी स्थिति है । निम्नवर्ग की पहली चिन्ता रोटी पाने की है । रोटी से अलग किसी भी प्रकार की सामाजिक या आर्थिक चिन्ता इसे नहीं है । यह हाथ के श्रम से जितना कमाता है उससे किसी तरह रोटी भर खा सकता है इसलिए पेट भरने के लिए जैसा भी काम करना पड़े यह करता है । शर्म करना, कुछ महसूस करना या कुछ बात सोचना इसका स्वभाव नहीं और न ही यह किसी भी प्रकार की आकांक्षाएं पालता है, यहाँ तक कि अपने शोषण के विरुद्ध विद्रोह करने की भी कोई इच्छा या रुचि इसे नहीं है । यह समाज का निचला अंतिम सिरा है इसलिए अपने स्थान से गिरकर और

1- प्रसाद, सरोज : प्रेमचन्द के उपन्यासों में सम्मसामयिक परिस्थितियों का प्रतिफलन, पृष्ठ-254 ।

नीचे जाने का कोई भय भी इसे नहीं है ।

किन्तु मध्यमवर्ग की स्थिति इन दोनों सामाजिक वर्गों के बीच की है उसे पैसा बटोरने और रोटी खाने की चिन्ता तो है ही लेकिन उसमें महसूस करने वाला तत्व भी है, उसमें जीवन का स्पन्दन है, वह इन दोनों वर्गों जैसा निष्क्रिय हो ही नहीं सकता इसलिए इसके सम्मुख विभिन्न समस्याएं हैं जिनमें अर्थ का अभाव, प्रदर्शन शहरों की ओर दौड़ना, बेरोजगारी और संयुक्त परिवारों के विघटन जैसी बातों की चर्चा हम अभी कर चुके हैं । अब कुछ एक और समस्याओं की बात हम करेंगे जिससे मध्यमवर्ग का चरित्र समझने में आसानी होगी ।

स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की समस्या:

अब जो समस्या हमारे सामने आती है वह -- स्त्री-पुरुष के मध्य सम्बन्धों की समस्या है । मध्यमवर्ग के आधुनिक शिक्षा प्राप्त नवयुवकों में नारी को लेकर दो प्रकार की धारणा दिखाई पड़ती है । वह अब भी मन ही मन एक सलज्ज, कोमल और भोली-भाली पत्नी की कल्पना करता है । शिक्षित और स्वतंत्र नारी को प्रेमिका के रूप में तो चाहता है किन्तु जब सलज्ज और कोमल के स्थान पर शिक्षित स्वतंत्र नारी ही पत्नी भी बन जाती है तो वह बौखला जाता है । वह नारी के स्वेच्छाचरण को अपनी सत्ता और अधिकार के विरुद्ध देखता है तो असंतुष्ट हो जाता है और कभी-कभी हाथ भी उठा देता है । वहचाहता है कि पत्नी पढ़ी-लिखी भी रहे, नौकरी कर पैसा भी घर में लाए किन्तु उसका प्रत्येक आचरण, व्यवहार और कार्य पति की अनुमति से ही हो । वह नारी में अब भी प्राचीन आदर्श और विचार ढूंढता है । अपना परम्परा पोषित स्वामी रूप छोड़ पाने में वह असमर्थ है इसलिए नारी के नए रूप और व्यवहार को स्वीकार नहीं कर पाता तथा उससे संशंकित और आतंकित रहता है । जबकि शिक्षा के क्षेत्र में युवतियों के आ जाने से उनका व्यवहार और दृष्टिकोण बदल गया । वह अब केवल सजी-सजाई गुड़िया ही नहीं रह गई

और न ही पुरुष की अनुगता-मात्र, वह अब परिवार की सक्रिय सदस्या है और पुरुष के साथ उसका व्यवहार बराबरी का हो गया। उसमें शिक्षा प्राप्ति और स्वयं अपने पैरों पर खड़ी होने के कारण एक स्वाभाविक गौरव का बोध है और वह अपनी स्थिति के प्रति सतर्क भी है। वह चेतनाशील है और महत्वाकांक्षी भी, उसमें स्वतंत्रता का बोध भी है इसलिए वह पुरुष के स्वामित्व भाव को सहन नहीं कर पाती। इस कारण वह वैवाहिक संबंधों में भी खप नहीं पाती। वैवाहिक सम्बन्धों में भावना और समझौते के स्थान पर दोनों के अहम् का टकराव होता है और जीवन कुण्ठा और तनाव से घिर जाता है।

स्त्री-पुरुष के इस रूप के अलावा कुछ पुरुष ऐसे भी मिलते हैं जो शिक्षिता पत्नी को उचित स्थान और सम्मान देते हैं स्नेह और प्रेम देते हैं और पत्नी के प्रति गर्व का भाव भी रखते हैं। दूसरी ओर आज भी समाज में ऐसी स्त्रियों की संख्या बहुत है जो शिक्षा और उन्मुक्त वातावरण से वंचित हैं तथा आर्थिक रूप से पराधीन हैं और इस कारण वह पति और परिवार के अन्यायों और शोषण की शिकार होकर तिल-तिल कर घुटती रहती हैं। उनकी स्थिति अब भी वही है कि पूरा जीवन निराशा और हताशा में व्यतीत करती हैं। पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्धों में तनाव का एक अन्य कारण यह है कि पुरुष सारा जीवन सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से पिसता है फिर भी वह राजनीति, समाज या दफ्तर में जहां कहीं भ्रष्टाचार, अनीति को व्याप्त देखता है उसके विरुद्ध विद्रोह करता है। उसमें सुधार लाना चाहता है और इसलिए लड़ता है। किन्तु अनुभव से उसे यह ज्ञात होता है कि उसका लड़ना कोई मायने नहीं रखता न तो स्थिति में सुधार आने की कोई गुंजाइश है और न ही उसे कुछ मिलने वाला है। अतः लड़ते-लड़ते वह टूटने लगता है। राजेन्द्र यादव लिखते हैं कि उसकी यह टूटन उसके परिवार और सम्बन्धों पर गहरा प्रभाव डालती है, ---"विद्रोह से जुड़ा है -- फ्रस्ट्रेशन। जिन्दगी कैदर मौर्चे पर पिटा हुआ क्लीव असमर्थ

आदमी सबसे बड़ी बहादुरी घर आकर बूढ़े-बाप या औरत पर दिखाता है। फ्रोहश और नंगी गालियाँ में अपना विद्रोह व्यक्त करता है -- लेकिन सुरक्षित जगहों पर ही यानि चहारदीवारी के भीतर-- न वह बॉस को गाली दे सकता है न दुकानदार को। औरत ही उसके इस फ्रस्ट्रेशन को झेलती है -- उसके विद्रोह के लिए डस्ट-बिन बनती है।"[1] यही कारण है कि दो व्यक्तियों के परिवार भी टूटते दिखाई पड़ रहे हैं और इस टूटन की पीड़ा सदस्यों को उन्मथित कर रही है। नगर के मध्यमवर्ग में यह बिखराव समान्तिक ऊब, विरसता, संत्रास, अविश्वास और रिक्तता भर देता है।"[2] (2)

कहा जाता है कि "भारत का मध्यवर्गीय व्यक्ति बाहर से अपने आपको बहुत प्रगतिशील, सचेत और बुद्धिमान बताता है जबकि कटु सत्य यह है कि वह भीतर से भयंकर रूप से अनुदार, रूढ़ और दकियानूस है।" ऐसा चरित्र होने के पीछे कारण यह है कि अविश्वास और रिक्तता के जिस वातावरण में बच्चा जन्म लेता है, बढ़ता है उसमें अभावों के मध्य रहने के कारण प्रतिदिन आत्महीनता की भावना पलती और बढ़ती है। वह हर छोटी से छोटी चीज़ को पाने के लिए भी घुटता है, उसकी हर एक महत्वाकांक्षा दबा और कुचली जाती है। कोई भी छोटी चीज़ संघर्ष के बाद प्राप्त होने पर उपलब्धि मानी जाती है। इसलिए हर काम में वह सशंक रहता है उसमें वह आत्म विश्वास नहीं आ पाता जिसके होने से व्यक्ति बड़ी से बड़ी चुनौती को हंसकर झेल लेता है। इसके अतिरिक्त मध्यवर्ग का परिवेश भी व्यक्ति को इसी मानसिकता में रहने को बाध्य करता है, उससे ऊपर नहीं उठने देता।

यही वह वजहें हैं जिनके कारण मध्यमवर्ग का आचरण समझ पाना

1- यादव, राजेन्द्र : कहानी: स्वरूप और संवेदना, पृष्ठ-156

2- विवेकीराय : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य और ग्राम जीवन, पृष्ठ-354।

मुश्किल होता है । इसी वर्ग की आत्मा विकृतियों पर रोती है, अन्याय के विरुद्ध आवाज़ भी यह उठाता है और सोच-विचार कर उत्थान के लिए क्रियाशील भी यही वर्ग होता है क्योंकि यह सबसे अधिक भाव-प्रवण और संवेदनशील होता है । लेकिन दूसरी ओर समाज में विकृतियां फैलाने वाला भी तो यही वर्ग होता है । दरअसल होता यह है कि "सम्पूर्ण सामाजिक इकाई का बेलन घूम-घूम कर इसी को रौंदता है ।[1] सामाजिक और राजनीतिक सभी प्रकार के दबाव इस पर पड़ते हैं जिन्हें यह सहन करता है । किन्तु साथ ही यह मानव-मूल्यों के प्रति सबसे अधिक सचेत भी रहता है "इसलिए वह न तो तन्त्र बन सकता है और न यंत्र । अपनी इन्हीं सारी विवशताओं के चलते वह इज्ज़त चुराते-चुराते उघड़ जाता है और अन्त में बेइज्ज़त हो जाता है ।[2]

भारत में स्वाधीनता प्राप्ति के बाद उपर्युक्त स्थितियों के साथ ही मध्यमवर्ग में टूटन, लड़खड़ाहट और पतन के लक्षण दिखाई पड़ते हैं । स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में आधुनिकता आनेके कारण एक परिवर्तन आया है, अब आकांक्षा और मोह भंग की टकराहट पहले से भी ज्यादा जटिल हो गई है । परम्परा से चले आ रहे सामाजिक मूल्य, परिवार के दायित्व और उनके प्रति प्रतिबद्धता का भाव जिनसे सामाजिक संरचना की आधारभूमि का निर्माण होता था उन्हें नयी पीढ़ियों ने तोड़ और छोड़ दिया है और नए दायित्व और मूल्य निर्मित न कर पाने के कारण आज की युवा पीढ़ी में एक रिक्तता का बोध आ गया है । इस कारण वह मुश्किल सवालों और समस्याओं का सामना करने की जगह उससे पलायन कर जाती है अत: "एक विचित्र सी सामाजिक स्थिति उत्पन्न हो गई है, इस रूप में जहां पुराने मूल्य टूट कर गिर रहे हैं, नयी युवा-पीढ़ी के द्वारा उनकी

1- प्रसाद, सरोज : प्रेमचन्द्र के उपन्यासों में समसामयिक परिस्थितियों का प्रतिफलन, पृष्ठ-250 ।

2- -- वही -- ,, ,, पृष्ठ-254

स्थानापूर्ति केलिए नए मूल्यों का निर्माण नहीं हो पा रहा है । इस प्रश्न से आज सभी कतरा रहे हैं ।[1]

जबकि समाज की स्थिति इतनी शोचनीय है तब भी विकास के नाम पर आज भी नए शोषक वर्ग एक ऐसा जाल बिछा रहे हैं जिससे मुक्ति पाना एक असंभव - सी बात जान पड़ती है । यानि ऐसी स्थिति हमारे सामने है जो अत्यन्त हीन और चरित्र विघटित है तथा समाज की निरन्तर अधोगामी स्थिति की सूचक है ।

---00000---

DSS
0,152,3,N03:g(Y,53)
152 M3;1

TH-5342

1- विवेकी राय : स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य और ग्राम-जीवन , पृष्ठ-321 ।

द्वितीय अध्याय

स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी कहानी और मध्यवर्ग

द्वितीय अध्याय

स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी कहानी और मध्यवर्ग

हिन्दी में कहानी का प्रारम्भ वास्तव में प्रेमचन्द से ही माना जा सकता है, क्योंकि प्रेमचन्द ही वह पहले कहानीकार थे जिन्होंने कहानी की परम्परा से प्राप्त रूढ़िवादी स्वरूप से अलग कर उसे सही स्थान पर प्रतिष्ठित किया । यही कारण है कि जिस युग में वह रचना कर रहे थे उसमें अन्य बहुत से लेखकों के भी कहानी-रचना में लगे होने के बावजूद उस युग को हम 'प्रेमचन्द-युग' और उसके बाद वाले को 'प्रेमचन्दोत्तर-युग' कहते हैं ।

प्रेमचन्द-युग वह समय है जब हमारे देश में राजनीतिक और सामाजिक दोनों क्षेत्रों में उथल-पुथल का वातावरण रहा । इस समय परम्परा से चले आ रहे मानवीय आदर्श और व्यवहार में परिवर्तन आना प्रारम्भ हो गया था । इन्हीं के समानान्तर साहित्य के मूल्यों में भी परिवर्तन आ रहा था । साहित्य अब केवल मनोरंजन या समय काटने की चीज़ नहीं रह गया था, 'वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली इकाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई'[1] बन गया था । इसलिए इस युग में हमें पहली बार देश के राजनीतिक और सामाजिक जीवन के महत्वपूर्ण पक्षों का निरूपण साहित्य में मिलता है ।

प्रेमचन्द - युग में जो साहित्य लिखा गया वह प्रथम महायुद्ध के बाद का साहित्य है । यद्यपि भारत का जन इस महायुद्ध से सीधे

1- प्रेमचन्द : कुछ विचार, पृष्ठ-3 (प्रगतिशील लेखक संघ, लखनऊ में अध्यक्षीय-भाषण)

तौर पर कहीं जुड़ता नज़र नहीं आता, किन्तु फिर भी इस युद्ध का प्रभाव आर्थिक स्तर पर बहुत गहरा पड़ा । इसका कारण यह है कि उस समय भारत ब्रिटेन के आधीन था और ब्रिटेन को भी इस युद्ध का परिणाम भुगतना पड़ा । भारतीय जनता को फलस्वरूप भयंकर आर्थिक मन्दी का सामना करना पड़ा और उनमें बहुत गहरी निराशा व्याप्त हो गई । किन्तु सन् 1920 के बाद जब कांग्रेस का नेतृत्व गांधी जी के हाथ में आया तब जनता में आशा का संचार हुआ । उसी समय कांग्रेस में निम्न मध्यवर्ग का भी प्रतिनिधित्व हुआ और राष्ट्रीय जागरण का एक नया अध्याय खुला ।

किन्तु धीरे-धीरे जनता यह महसूस करने लगी कि कांग्रेस का आन्दोलन अपूर्ण है । वह सामन्तवाद के विरुद्ध नहीं है बल्कि उसकी सहायता से अपने नेतृत्व की रक्षा करना चाहती है । साथ ही सविनय अवज्ञा आन्दोलन के पश्चात् जनता को गांधीजी पर भी उतनी अगाध श्रद्धा नहीं रही जितनी पहले थी । इनके अतिरिक्त ब्रिटिश सरकार का रवैया तो आम जनता के समक्ष स्पष्ट ही था, वह महाजनी सभ्यता और पूंजीवाद का सहयोग लेकर अपनी नीतियां निर्धारित कर रही थी और साथ ही जनता की एकता को तोड़ देने के लिए साम्प्रदायिकता फैलाने के प्रयास भी कर रही थी ।

राजनीतिक तौर पर इस प्रकार से निराश और पीड़ित जनता पर प्रकृति की मार भी पड़ रही थी, उस पर महामारी और अकाल के प्रहार हो रहे थे । वर्षों से अंधविश्वासों और रूढ़ियों में भारत की जनता जकड़ी हुई थी और उसमें दहेज, सती-प्रथा , अनमेल-विवाह, वृद्ध-विवाह , कन्या-विक्रय, जाति-व्यवस्था, छुआ-छूत, पर्दा-प्रथा जैसी कुरीतियां और विधवाओं तथा वेश्याओं की विभिन्न समस्याएं मुंह फैलाए खड़ी थीं । इन समस्याओं और कुरीतियों के विरुद्ध विविध

धार्मिक और सामाजिक आन्दोलन चलाए जा रहे थे और जन-सामान्य को शिक्षित करने का प्रयास किया जा रहा था । परिणामस्वरूप सामाजिक जीवन में कुछ ऐसे परिवर्तन भी स्पष्ट होने लगे जिन्होंने मध्यकालीन सामन्ती जीवन-मूल्यों पर प्रहार किया ।

किन्तु नई शिक्षा के परिणामस्वरूप जो नए सामाजिक सम्बन्ध और नवीन जीवन-मूल्य मध्यवर्गीय समाज में पैदा हुए वह स्वार्थ और व्यावसायिकता से नवीन जीवन-मूल्य परिचालित थे । समाज में नयी सभ्यता का भी आगमन हुआ, इससे ऐसा रहन-सहन फैल रहा था जिसमें पारिवारिक स्नेह, आपसी-सौहार्द और देश-प्रेम सब कुछ धन से ही तुलने लगा और छल-प्रपंच, असत्य, खुशामद ही उन्नति प्राप्ति के साधन बन गए । नव-विकसित औद्योगीकरण का ग्रामीण जीवन पर यह प्रभाव पड़ा कि वहां भी शान्ति, पारस्परिक प्रेम-भाव और परिवार-व्यवस्था सब छिन्न-भिन्न हो गया ।

प्रेमचन्द : कहा जाता है कि साहित्यकार की चेतना का निर्माण युगीन परिस्थितियां ही करती हैं और यह कथन प्रेमचन्द पर पूरा उतरता है । युग की परिस्थितियों के अनुरूप ही प्रेमचन्द की विचारधारा में परिवर्तन आया और तदनुरूप साहित्य भी अपना रूख पलटता दिखाई पड़ता है ।

पहले-पहल प्रेमचन्द अन्य सभी स्वराज्य-प्रेमियों की ही भांति कांग्रेस और गांधी जी पर अगाध श्रद्धा रखते थे किन्तु धीरे-धीरे इनकी सीमाओं का बोध भी प्रेमचन्द को हो गया । इसी समय आर्य-समाज के सुधार-आन्दोलनों की भी सीमाओं को वह पहचान गए और नवीन वामपंथी विचारधारा से प्रभावित हुए, तब उन्हें लगा कि चाहें वह सामाजिक कुरीतियां और अंधविश्वास हों चाहें राजनीतिक आन्दोलन इन सबके लिए आवश्यकता है, इस पूरी की पूरी समाज-व्यवस्था को बदल देना ।

"वह सुधारवाद और हृदय-परिवर्तन की फौरी टीप-टाप के बदले अब व्यक्तिगत सम्पत्ति और इजारेदारी की जड़ों पर हमला करके, एक न्याय और समतामूलक व्यवस्था के निर्माण पर बल देते हैं।"[1]

उन्होंने अपनी कहानियाँ "ठाकुर का कुंआ, सद्गति, स्वामी प्रेम की होली, मूठ, डामुल का कैदी जैसी असंख्य कहानियों में अछूत, विधवा, वेश्या, शोषित, पीड़ित व्यक्तियों की समस्याओं को उठाया और समाज में व्याप्त कुरीतियों और अंधविश्वासों पर कठोर प्रहार किया। वह स्वयं लिखते हैं ----

"हमारा आदर्श सदैव से यह रहा कि जहां धूर्तता, पाखण्ड और सबलों द्वारा निर्बलों पर अत्याचार देखो, उसको समाज के सामने रखो।"[2] डा० नामवर सिंह ने भी लिखा, " आर्थिक, सामाजिक वैषम्य और अन्याय-अत्याचार का विरोध उनकी कहानियों के मुख्य स्वर हैं।"[3]

प्रेमचन्द के पात्र प्राय: गरीब किसान, मजदूर अछूत और दरिद्र थे जो शोषण को सहकर भी "अपने धर्म और मनुष्यता को हाथ से न जाने"[4] देते थे। पर प्रेमचन्द जानते थे कि धन का अभाव किसी वर्ग को इस हद तक प्रभावित करता है कि व्यक्ति अपने सम्बन्धों और जीवन-मूल्यों से नाता तोड़ लेता है और तब वह समाज से विद्रोह भी कर सकता है। उदाहरण के लिए "पूस की रात" का हल्कू। हालांकि वह पैशे से

1- मधुरेश : क्रान्तिकारी यशपाल : एक समर्पित व्यक्तित्व" में संकलित लेख- प्रेमचन्द की परम्परा और यशपाल", पृष्ठ-216

2- प्रेमचन्द : विविध प्रसंग, भाग-2, पृष्ठ-475

3- डा० नामवर सिंह : हिन्दी प्रतिनिधि कहानियां, आमुख, पृष्ठ-13

4- प्रेमचन्द : विविध प्रसंग, भाग-2, पृष्ठ-475।

खेतिहर है किन्तु पूस की एक सर्द रात में उसे जब खुले खेत में बिना उपयुक्त वस्त्रों के रखवाली के लिए जाना पड़ता है तब उसके अभाव उसके भीतर विद्रोह का भाव पैदा कर देते हैं। सर्दी से बचने के लिए वह पत्तियां बटोर कर उन्हें जलाता है और उस सर्द रात में बदन को जब गरमाई मिलती है तो उसे नींद भी आ जाती है। नींद में उसे खेत में नीलगायों के घुस आने और फिर खेत के रौंदे जाने सबका पता रहता है किन्तु वह मानसिक तौर पर विद्रोह कर देता है। सुबह पत्नी के जगाने पर उसका विद्रोह इस कथन के माध्यम से प्रत्यक्ष होता है कि अब पूस की रात में खेत की रखवाली तो न करनी पड़ेगी। अत्याचार और असमानता के प्रति यह उसका अप्रत्यक्ष विद्रोह है किन्तु 'कफ़न' के घीसू और माधव ने समाज से प्रत्यक्ष विद्रोह कर दिया है। अभाव और भूख ने इन दोनों के बीच बाप-बेटे के सम्बन्ध को बचने ही नहीं दिया है, इसी तरह उनके और प्रसवपीड़ा में मरणोन्मुख बुधिया के मध्य भी कोई मानवीय सम्बन्ध नज़र नहीं आता। इसी कारण वह बुधिया के कफ़न के पैसों को भी शराबखाने में भरपेट खाकर और शराब पीकर खत्म कर देते हैं। इस तरह मानवीयता और नैतिकता जैसी बातें मज़ाक बनकर रह जाती हैं और मूल्य हो जाता है उनका वह कुछ देर का सुख जो बुधिया के कफ़न के पैसों से उन्हें मिला।

इस तरह प्रेमचन्द धीरे-धीरे अपनी कहानियों में आदर्श का साथ छोड़कर यथार्थ धरातल पर पैर जमाकर खड़े होते हैं और यही कारण है कि 'हिन्दी कहानी की चर्चा प्रेमचन्द के बिना सम्भव ही नहीं होती। प्रेमचन्द हिन्दी कहानी के उसी तरह पिता हैं जिस तरह हिन्दी गद्य के पिता भारतेन्दु हैं। भारतेन्दु की ही भांति प्रेमचन्द ने हिन्दी कहानी की ज़मीन तैयार की; खेत जोता, बोया और काटा भी।... प्रेमचन्द का हाथ सदा देश की नब्ज़ पर रहा।'[1] हिन्दी कहानी को उनकी यह महत्वपूर्ण देन है।

1- गुप्त, मैथ प्रसाद : साहित्यिक संस्था 'रचना' की त्रिदिवसीय संगोष्ठी की प्रथम गोष्ठी का अध्यक्षीय भाषण (संकलित-हिन्दी कहानी: एक मूल्यांकन : सावित्री चन्द्र शोभा, असगर वजाहत) अप्रैल, 76

प्रसाद : प्रेमचन्द की तुलना में प्रसाद की कहानियां एकदम भिन्न प्रकार की हैं। उन्होंने अपनी कहानियों के द्वारा एकदम भिन्न प्रकार के जीवन और लोक का निर्माण किया। प्रसाद समय की सामाजिक जटिलता, विडम्बना और विषमता को अनुभव तो करते थे किन्तु उसका वर्णन नहीं करते थे। वे एक ऐसे भावात्मक संसार की रचना करना चाहते थे जहां व्यक्ति समाज और समय से दूर जाना चाहता है। इनके इस भावात्मक लोक की मूल प्रेरणा प्रेम है और कहानियों में भी प्रेम की यात्रा ही दिखाई गई है। कहानी में प्रेम के मध्य बाधा बनकर समाज आदि नहीं आते बल्कि नायक या नायिका के मन का द्वन्द्व है जो बाधा बनता है। इसी लिए प्रह्लाद अग्रवाल को लगता है कि 'प्रसाद की कहानियों के अन्त में कोई निर्णायक बिन्दु नहीं होता, अपितु एक ऐसा मनोवैज्ञानिक क्षण होता है जो संवेदना को गहरा देता है। कहानी एकाएक फक्कफोरती नहीं अपितु हल्का-हल्का आघात लगातार करती रहती है।'[1] उदाहरण के लिए उनकी सर्वश्रेष्ठ मानी जाने वाली 'आकाशदीप' कहानी को लिया जा सकता है। इस कहानी का कथानक सामाजिक विषमताओं से दूर एक काल्पनिक कथानक है। समुद्र के बीच एक द्वीप में दो पात्रों के माध्यम से कहानी की कल्पना की गयी है। पात्रों के आस-पास कोई भी सामाजिक दबाव या घटना नहीं है, बस पात्रों की मानसिक उथल-पुथल को चित्रित किया गया है। प्रेमपूर्ण जीवन जीते-जीते नायिका चम्पा के मन में बुद्धगुप्त के प्रति धीरे-धीरे शंका ने सिर उठाना शुरू किया कि वही चम्पा के पिता का हत्यारा है। यद्यपि वह बुद्धगुप्त को बेहद प्रेम करती है मगर उसे लगता है कि वह बुद्धगुप्त से घृणा करती है। प्रेम और घृणा का संघर्ष होता है जिससे उत्पन्न होता है अवसाद, और इसी अवसाद में कहानी का अन्त हो जाता है।

1- बहलाद अग्रवाल : हिन्दी कहानी : सातवां दशक, पृष्ठ-2

इस प्रकार की रंग-बिरंगी, रोमान्टिक कल्पना से रंगी कहानियों के अतिरिक्त इनकी कुछ एक कहानियों में यथार्थ चित्रण का प्रयास भी मिलता है, ऐसी कहानियों में 'गुण्डा' महत्वपूर्ण है। गुण्डा में चित्रित है 18वीं शती की काशी, जहां सामाजिक परिस्थितियां कुछ इतनी विषम थीं कि कुछ वीर, बलशाली किन्तु निराश व्यक्तियों ने एक सम्प्रदाय का निर्माण कर लिया और उन्हें गुण्डा कहा जाने लगा। इसी प्रकार का एक युवक कहानी का पात्र है जो निर्बलों की सहायता करता है, अत्याचारियों और अन्याय का विनाश करता है। प्रसाद की यह कहानी उनकी अन्य कहानियों से अलग हटकर यथार्थ से किसी न किसी स्तर पर जुड़ती अवश्य है किन्तु प्रसाद ने भारतवासियों की उस समय की पीड़ा, उनके शोषण या समस्याओं को विषय नहीं बनाया जबकि न तो ऐसा था कि वह इन सब समस्याओं से परिचित न थे और न ही ऐसा था कि उनके युग में सभी साहित्यकार उनकी तरह कल्पना लोक का निर्माण कर रहे थे। उसी युग में प्रेमचन्द लिख रहे थे मगर यदि प्रसाद के विषय भी समाज के मध्य से ही उठाए गए होते तो उनके विषय में यह भी न कहा जाता कि 'उनकी अधिकांश कहानियों के कथानक का स्रोत समसामयिक जीवन नहीं है'[1] किन्तु इससे प्रसाद का महत्व कम हो जाता है। ऐसा डा० नामवर सिंह नहीं मानते वह लिखते हैं --'प्रेमचन्द ने यदि हिन्दी कहानी को यथार्थोन्मुख करने का प्रयास किया तो प्रसाद ने उसे भाव प्रवणता और संवेदनात्मकता का संस्कार दिया।'[2] यह सत्य है कि चतुरसेन शास्त्री, विनोदशंकर व्यास, वाचस्पति पाठक आदि ने प्रसाद की परंपरा को आगे बढ़ाने का प्रयास किया, किन्तु शीघ्र ही इस धारा का विकास मन्द पड़ गया और निस्सन्देह प्रेमचन्द की यथार्थवादी धारा ही स्वीकृति पा सकी, अधिकतर लेखकों ने भी इसे ही अपनाया।

1- प्रहलाद अग्रवाल : हिन्दी कहानी : सातवां दशक, पृष्ठ-2

2- डा० नामवर सिंह : हिन्दी प्रतिनिधि कहानियां, आमुख, पृष्ठ-14

उग्र : प्रेमचन्द और प्रसाद के बाद यद्यपि अन्य बहुत से कहानीकारों ने हिन्दी कहानी के विकास के लिए कार्य किया किन्तु एक अन्य प्रमुख नाम उग्र का आता है । उग्र के विषय में कहा जाता है कि जिस तरह जोनाथन स्विफ्ट ने व्यंग्य को कहानी का अविच्छिन्न उपादान बना दिया, लगभग उतनी ही कलात्मकता और यथार्थवादिता के साथ उग्र ने भी कथा को व्यंग्य का साधन बना दिया ।"[1] उग्र की कहानी-कला का विकास "करुण कहानी" से लेकर "चांदनी" तक में स्पष्ट है । दरअसल व्यंग्य की प्रकृति समाज की अवस्था तथा उस समाज की सांस्कृतिक आवश्यकताओं पर निर्भर करती है ।[2] और उग्र ने व्यंग्य को ही हथियार बना लिया । सामाजिक अंध-विश्वास और धार्मिक पाखण्डों पर इन्होंने प्रहार किए हैं । मूसल ब्रह्म, प्राइवेट इन्टरव्यू कम्युनिस्ट दरवाजे पर, मूर्ख, खुदाराम आदि उनकी श्रेष्ठ कहानियां हैं जो समाज का वास्तविक दृश्य उपस्थित करती हैं । अपने समाज के अन्तर्विरोधों की जैसी तीखी पहचान उग्र को है, वैसी तीखी पहचान उस ज़माने के बहुत कम कहानीकार कलात्मक स्तर पर व्यक्त कर पाते हैं । केवल व्यंग्य की दृष्टि से ही नहीं बल्कि प्रेमचन्द के समानान्तर यथार्थवादी कला के नए दिगन्तों को उद्भासित करने की दृष्टि से भी, उग्र का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है ।"[3]

प्रेमचन्द, प्रसाद, उग्र और उनके समकालीन अन्य लेखकों के बाद हिन्दी कहानी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले साहित्यकारों के मध्य यशपाल, जैनेन्द्र और अज्ञेय का कार्य महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय है ।

हिन्दी कहानी के विकास में यह समय चौथे और पांचवें दशक का समय कहलाता है । राजनीतिक क्षेत्र में स्वाधीनता संग्राम ने इस समय एक नया मोड़

1- रेखा अवस्थी : प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य, पृष्ठ-173

2- --वही--- ,, ,, पृष्ठ-173

3- --वही--- ,, ,, पृष्ठ-173-174

लिया । इस समय तक कांग्रेस के नेतृत्व और उसकी नीतियों से जन-मानस विरोध रखने लगा था । इसी समय देश में वामपंथी विचारधारा का भी प्रसार व्यापक पैमाने पर हो गया था । इसके अतिरिक्त चिन्तन के क्षेत्र में भी विदेशी प्रभाव आ रहा था यानि मार्क्स और फ्रायड के दर्शन और सिद्धान्तों को भी भारतीय शिक्षित वर्ग पढ़ रहा था और प्रभाव भी ग्रहण कर रहा था । चौथे और पांचवें दशक का यही वह समय है जब भारत को उसकी इच्छा के विरुद्ध द्वितीय विश्वयुद्ध में बलपूर्वक घसीटा गया और इस कारण भारतीय जन को मुसकर मानसिक और आर्थिक यातनाओं का सामना करना पड़ा । इसी समय जनता की सन् 1942 की स्वत: स्फूर्त क्रान्ति का निर्ममतापूर्वक दमन किया गया और इसी समय बंगाल में महादुर्भिक्ष भी पड़ा ।

ऐसे समय में जो लेखक रचना कर रहे थे, वे इन सब समस्याओं से अप्रभावित नहीं रहे और उन्होंने अपनी कहानियों में अपने समय के सामाजिक यथार्थ के किसी न किसी पहलू को चित्रित करने का प्रयास किया किन्तु उन सब की दृष्टि इन समस्याओं के प्रति भिन्न रही क्योंकि उन पर पश्चिम के विभिन्न विचारकों का प्रभाव था ।

यशपाल : प्रेमचन्द की बाद की कहानियों में समाजवादी विचारधारा की जो भूमि मिलती है वैसी ही भूमि यशपाल के यहां भी प्राप्त होती है । इसी वजह से कहा जाता रहा है कि यशपाल प्रेमचन्द की परम्परा का निर्वाह करते हैं या 'प्रेमचन्द की भूमि पर भव्य महल का निर्माण करते हैं ।'[1] यह सही है कि जिस तरह प्रेमचन्द समाज से जुड़कर और समाज के मध्य से विषय उठाकर कहानियां लिखते थे उसी तरह यशपाल के यहां भी समाज और उसके यथार्थ का ही चित्रण मिलता है । लेकिन यशपाल पर मार्क्स का और कुछ सीमा तक फ्रायड की विचारधारा का प्रभाव है इसलिए

1- प्रहलाद अग्रवाल : हिन्दी कहानी: सातवां दशक, पृष्ठ-4

समस्याओं के निरूपण में उनकी दृष्टि प्रेमचन्द से भिन्न हो जाती है ।

परिमाण की दृष्टि से यशपाल का साहित्य बहुत विशाल है । "शहरी मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग के जीवन का शायद ही कोई पहलू हो जहां तक यशपाल की कलम न पहुंची हो ।"[1] समाज में जहां भी यशपाल को असमानता दिखाई पड़ती है उस पर विचार कर वे उसे अपनी कहानियों का विषय बना लेते हैं । विषय को वह व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं किन्तु वे अधिकांशत: अपनी बात सीधे-सीधे ही कहते हैं, उनकी कहानियों में छिपाव, अस्पष्टता और पहेली बुझाने जैसा भाव शायद ही कहीं मिले ।"[2]

यशपाल के साथ ही कहानी के क्षेत्र को प्रभावित करने वाले दो अन्य कहानीकार जैनेन्द्र और अज्ञेय हैं, जिन्होंने कहानी को एक नया मोड़ दिया । इन लेखकों के यहां समाज गौण हो गया, व्यक्ति और उसका अन्तर प्रमुख हो गए । इन कहानियों के विषय में प्रहलाद अग्रवाल कहते हैं, "जीवन की एक द्रुत झांकी, स्वभाव चरित्र या मन:स्थिति को एकाएक आलोकित कर देने वाली समस्या या घटना को इन्होंने अपना उपजीव्य बनाया ।"[3] यानि मानसिक जटिलता और संघर्ष इनकी कहानियों के विषय बने । इन लेखकों ने जीवन के सामान्य पटल के स्थान पर असामान्य परिस्थितियों की अवधारणा की ।

जैनेन्द्र कुमार : जैनेन्द्र से इस प्रकार की कहानियों के लेखन का प्रारंभ माना जाता है । नामवर सिंह कहते हैं, "इनके हाथों हिन्दी कहानी अन्तर्मुखी हुई और मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताओं की दिशा में आगे बढ़ी ।"[4] जैनेन्द्र पर

1- डा० नामवर सिंह : हिन्दी प्रतिनिधि कहानियां, आमुख, पृष्ठ-16

2- प्रहलाद अग्रवाल : हिन्दी कहानी: सातवां दशक, पृष्ठ-4

3- --वही -- ,, ,,

4- डा० नामवर सिंह: हिन्दी प्रतिनिधि कहानियां, आमुख, पृष्ठ-15

गांधीजी का बहुत प्रभाव था और उनकी कहानियों में नैतिकता का जो तत्व मिलता है उसका कारण भी यही है । किन्तु उनकी कहानियों में प्राय: नारी-पुरुष-सम्बन्धों में ही नैतिकता का प्रश्न विषय बना । वरना जैनेन्द्र प्राय: सेक्स और प्रेम के इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं । कहीं-कहीं नारी मन की व्यथा और उसकी दुविधा को समझने का प्रयास भी काफ़ी सफल रहा है । जैसे 'पत्नी ' में नारी मन की घुटन और उसका अवसाद, पर कुछ भी न कहने की उसकी प्रवृत्ति कहानी में उभर कर सामने आती है । इस प्रकार की कहानियों में भारतीय रूढ़िग्रस्त नारी की कराहती आत्मा है जो अपने ही संस्कारों से त्रस्त है । किन्तु बाकी अधिकांश कहानियों में उलझाव है और सूक्ष्म मानसिक स्थितियां हैं जिनके कारण कहानियां अधिकतर ऊबाऊ हो गई हैं । इन्द्रनाथ मदान को लगता है कि जैनेन्द्र विभिन्न विषयों पर 'जो सोचते हैं उसे कहानी पर आरोपित करते हैं और इस कारण बोझिलता आती है ।[1] जैनेन्द्र के पात्र प्राय: अहंवादी, चिन्तनशील पर भावुक हैं । पुरुष पात्र परम्परागत किन्तु उदार हैं और स्त्रीपात्र त्यागमयी भारतीय नारियां हैं । वह मानते हैं कि नारी चाहे कितनी भी प्रगतिशील हो जाए उसमें नारी-सुलभ भावनाएं सदा रहेंगी ।

अज्ञेय : अज्ञेय भी अपनी कहानियों में जैनेन्द्र के ही समान नैतिक ऊहापोह और व्यक्ति के मन की आंतरिक गुत्थियों के सूक्ष्म विश्लेषण को ही विषय बनाते हैं । इनके लिए व्यक्ति समाज की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है किन्तु व्यक्ति के आत्म-संघर्ष के साथ-साथ व्यक्ति का परिवेश-संघर्ष भी इनकी कहानियों के विषय बनते हैं । भारतीय समाज की रूढ़िप्रियता, शोषण और संघर्ष आदि सभी विषयों को इन्होंने कहानी के माध्यम से उठाया । इनकी कुछ श्रेष्ठ कहानियां रोज़, कविप्रिया, हीलीबोन की बत्तखें, जिजीविषा

1- इन्द्रनाथ मदान : हिन्दी कहानी: एक नई दृष्टि, पृष्ठ-102

चिड़ियाघर और तितीन बाबू हैं । इन में से 'रोज़' कहानी महत्वपूर्ण है । कहानी में हिन्दू समाज में सामन्तवादी मूल्यों की शिकार स्त्री की पारिवारिक घुटन और स्करस जीवन को अज्ञेय ने देखा और उसका आत्मीयता से चित्रण किया है । मालती विवाह के पश्चात् एक निर्दिष्ट ढर्रे पर मशीन की तरह काम करते हैं, उसके जीवन में कोई नवीनता या परिवर्तन ही नहीं आता । रोज़ गृहस्थी के वही काम निपटाना और घड़ी के घण्टे गिनते हुए जिन्दगी को किसी तरह खींचते जाना । नीरसता जीवन में इस तरह व्याप्त हो गई है कि खुशी या दुख के लिए कोई अहसास बाकी ही नहीं रह गया है, उत्साह, उमंग, वेदना, पीड़ा कुछ नहीं, बस रह गई है तो स्करसता । उसके पति डाक्टर हैं दूसरों के दुख-दर्द का इलाज करते हैं किन्तु घर में घुट रही पत्नी के मनोजगत् में जो पीड़ा और नीरसता छा गई है उसका इलाज तो करना दूर, उस तरफ उनका ध्यान ही नहीं जाता । कहानी का उद्देश्य कोई आदर्श प्रस्तुत करना कतई नहीं है बल्कि यथार्थ चित्रण द्वारा भारतीय नारी की विडम्बना और पति-पत्नी के आपसी सम्बन्धों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है ।

इनके पात्रों के विषय में कहा गया कि उनके चरित्र असाधारण मानसिकता के प्रतीक प्रतीत होते हैं, किन्तु इसमें कोई शक नहीं कि उनकी कहानियों में मानसिक गतिविधियों का सूक्ष्म अंकन मिलता है ।[1] किन्तु इनके पात्र प्राय: बहिर्मुखी भी हैं और आस-पास की परिस्थितियों तथा समाज से जूझने को भी प्रस्तुत हैं । यानि व्यक्ति प्रधान होने के बावजूद अज्ञेय के चरित्र अन्तर्मुखी नहीं हैं । जैनेन्द्र की अपेक्षा अज्ञेय की कहानियों का दायरा विस्तृत है क्योंकि जैनेन्द्र के यहां मानसिक अन्तर्द्वन्द्व ही प्रमुख हैं जबकि अज्ञेय का पात्र बाह्य परिवेश से भी जुड़ा रहता है ।

1- डा० नामवर सिंह : हिन्दी प्रतिनिधि कहानियां : पृष्ठ-16

इलाचन्द्र जोशी: जैनेन्द्र और अज्ञेय की इस मनोविश्लेषण प्रधान धारा में एक अन्य नाम इलाचन्द्र जोशी का है। इलाचन्द्र जोशी पर फ्रायड का बहुत प्रभाव है और यही कारण है कि पात्रों के आत्ममन्थन को विषय बनाकर इन्होंने कहानियां लिखीं। जैनेन्द्र और अज्ञेय के समान वैचारिक या सामाजिक समस्या तो इनके यहां नहीं ही है लेकिन इनकी समस्या शुद्ध वैयक्तिक भी नहीं है। "उन्होंने फ्रायड के सेक्स और स्वप्न सिद्धान्तों से कुछ सूत्र लेकर केस-हिस्ट्री लिखी है, कहानियां नहीं।"[1] इनके पात्र किसी मानसिक गुत्थी के कारण परेशान रहते हैं और कहानी के अन्त तक आते-आते उनकी इस परेशानी और छटपटाहट को किसी सामाजिक भावना से जोड़कर कहानी खतम कर दी जाती है। यही कारण है कि इनकी कहानियां बहुत महत्वपूर्ण नहीं मानी जातीं।

इस प्रकार की कहानियां किसी भी खास ऐसी समस्या को नहीं उठातीं जिससे पाठक परिचित हो या जिनका परिचय प्राप्त कर पाठक में किसी समझदारी का विकास हो या जो व्यक्ति और समाज के विकास में सहायक हो सके। यह कहानियां इतनी जटिल और रहस्यात्मक हैं कि एक प्रबुद्ध पाठक के लिए भी समझने में न केवल कठिन हैं बल्कि यह विचार पाठक के ऊपर से निकल जाते हैं। "इन कहानियों का व्यक्ति भी इतना आत्मकेन्द्रित है कि वह अपनी एक अलग दुनिया में जीता है।"[2] बाहरी किसी भी समस्या या व्यक्ति से उसका कोई मतलब नहीं रहता। यही कारण है कि परम्परा से हटकर कुछ नया तो इन कहानियों में लाने की कोशिश हुई किन्तु यह अधिक लोकप्रिय न हो सकीं। "इन कहानीकारों ने कहानी को मोड़ा अवश्य, पर शीघ्र ही कहानी पुनः अपने स्वाभाविक विकास-पथ पर बढ़ने के लिए इनके हाथों से छूट गई।"[3]

1- प्रहलाद अग्रवाल : हिन्दी कहानी: सातवां दशक, पृष्ठ-2

2- --वही-- ,, ,, पृष्ठ-2

3- --वही-- ,, ,, पृष्ठ-5।

अश्क : इन कहानीकारों के अतिरिक्त एक अन्य लेखक भी उल्लेखनीय हैं, वह हैं-- अश्क । उपेन्द्रनाथ 'अश्क' प्रेमचन्द की ही भांति पहले उर्दू में लिखते थे । अपनी कहानियों में यह प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा का ही विकास करते हैं । यह स्वयं को प्रेमचन्द के अतिरिक्त समरसेट माम, मोपासा और चेखव से प्रभावित मानते हैं । इनकी कहानियों में 'मध्यवर्गीय विडम्बना विषय बनी है, कहीं-कहीं पारिवारिक जीवन के सुन्दर चित्र भी मिलते हैं । इनकी गंभीर कहानियां चुनौती का परिणाम हैं और अगंभीर कहानियां पाठक के मनोरंजन का ।'[1] अश्क वह लेखक हैं जिन्होंने प्राय: हर आन्दोलन से जुड़कर लिखने का प्रयास किया है । वह हर तरह की आज़मायश में यकीन रखते हैं ताकि समय की कहानी से अपना कदम मिला सकें ।... कहानी के हर वाद में कूद कर और हर फैशन में बहकर अपनी रचना-प्रक्रिया को सूचित करते हैं ।'[2]

इनके अतिरिक्त भगवतीचरण वर्मा, निराला, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार राधाकृष्ण, अमृतलाल नागर, पहाड़ी भगवती प्रसाद वाजपेयी, रांगेय राघव और विष्णु प्रभाकर तथा राहुल भी इस समय के कुछ महत्वपूर्ण कहानीकार हैं जिन्होंने उस समय की किसी न किसी समस्या को लेकर अपनी कहानियों की रचना की ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जिस यथार्थवादी चित्रण का प्रारम्भ प्रेमचन्द ने किया चौथे और पांचवें दशक के प्राय: सभी कहानीकारों ने अपनी-अपनी विचारधारा और दृष्टि से उसी प्रकार के यथार्थ चित्रण का प्रयास अपनी कहानियों में किया और हिन्दी कहानी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

1- मदान इन्द्रनाथ : हिन्दी कहानी : अपनी ज़बानी, पृष्ठ-110

2- --वही-- ,, ,, : एक नई दृष्टि: पृष्ठ-22-23 ।

तृतीय अध्याय

यशपाल की कहानियाँ और मध्यवर्गीय पुरुष

तृतीय अध्याय

यशपाल की कहानियाँ और मध्यवर्गीय पुरुष

यशपाल अपनी पीढ़ी के एक सशक्त और महत्वपूर्ण कहानीकार हैं। उन्होंने अपने सम्पूर्ण रचना-काल में उपन्यास, निबन्ध, नाटक आदि के अतिरिक्त लगभग 200 कहानियों की रचना की है जो उनके सत्रह कहानी संग्रहों में संग्रहित हैं। इनमें राजनीतिक, दार्शनिक और सामाजिक प्राय: सभी प्रकार के विषयों से संबद्ध कहानियाँ हैं किन्तु अधिकतर कहानियों में सामाजिक जीवन के यथार्थ चित्रण ही को विषय बनाया गया है। "यशपाल की मर्मभेदी दृष्टि समाज में होने वाले अत्याचारों समाज की विभीषिकाओं, कुरूपताओं, अन्धविश्वासों, धार्मिक आडम्बरों, अनैतिक आचरणों का साहित्य के माध्यम से नग्न प्रदर्शन करके ही संतुष्ट नहीं होती बल्कि उन पर सख्त प्रहार करती है।"[1]

दरअसल होता यह है कि जागरूक लेखक अपने आस-पास की दुनिया से जुड़कर चलता है इसलिए अपने समय के प्रश्नों और समस्याओं को ही अपनी रचना का विषय बनाता है और इसके द्वारा वह ऐसे पाठकों के वर्ग का भी निर्माण करता है जो साहित्य के माध्यम से अन्य लोगों की समस्याओं और प्रश्नों को समझकर उनके हकों की लड़ाई लड़ने के लिए अग्रसर हों। "इस कार्य के लिए वह परम्परावादी जड़ पाठक-वर्ग की मध्यकालीन साहित्यिक चेतना और उसके संस्कारों पर चोट करता है तथा साथ ही उसके सामने एक नए सोच का विकल्प भी प्रस्तुत करता है।"[2]

1- गुप्त, सरोज : यशपाल: व्यक्तित्व और कृतित्व, पृष्ठ-18

2- मधुरेश : क्रान्तिकारी यशपाल : एक समर्पित व्यक्तित्व, पृष्ठ-212

इसी प्रकार का कार्य यशपाल भी अपने साहित्य द्वारा करने का प्रयास करते दिखाई पड़ते हैं। साहित्य की विधाओं में भी कहानी उन्हें अधिक सशक्त माध्यम लगती है जिसके द्वारा व्यक्ति समाज और अपनी स्वयं की समस्याओं पर चिन्तन करता है। फिर उस चिन्तन और विचार की प्रक्रिया को रूचिकर बनाकर कहानी के रूप में प्रस्तुत कर देता है।"[1]

इनकी कहानियों में इसी कारण विषय का वैविध्य है यानि समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याएं -- शोषण, विधवा समस्या, उच्चवर्गीय व्यक्ति के आचार, व्यवहार के साथ निम्नवर्ग का जीवन, रहन-सहन और उसकी समस्याएं उठाई गई हैं किन्तु इनके अतिरिक्त मध्यवर्ग से सम्बद्ध कहानियों की संख्या सर्वाधिक है। इनमें यशपाल ने मध्यवर्ग की सामाजिक स्थिति, मध्यवर्गीय व्यक्ति की प्रवृत्तियां और समस्याएं क्या हैं -- इन विषयों को उठाया है।

समाज में मध्यवर्गीय व्यक्ति की क्या स्थिति है, जीवन पर्यन्त अपनी स्थिति से निकल पाने का उसका संघर्ष और उसके समक्ष आने वाली समस्याएं उसे कहां पहुंचा देते हैं इससे तो हम परिचित ही हैं। इसी के परिप्रेक्ष्य में अब हम यशपाल की उन कहानियों की चर्चा करेंगे जिनके विषय मध्यवर्ग से संबंधित हैं, जिससे यह स्पष्ट हो जाएगा कि मध्यवर्ग के कौन-कौन से रंग और पक्ष इन कहानियों में चित्रित हैं।

प्रकाश चन्द्र मिश्र मानते हैं कि मध्यवर्ग के वास्तव में दो स्तर हमें समाज में दिखाई पड़ते हैं -- उच्चमध्यवर्ग और निम्नमध्यवर्ग।"यशपाल

1- यशपाल : ओ भैरवी (भूमिका)।

के कथा-साहित्य में प्राय: सभी प्रमुख पात्र इन्हीं दोनों स्तरों से संबंधित हैं परन्तु उन्होंने निम्नमध्यवर्ग की आर्थिक मजबूरियों और उनसे उत्पन्न समस्याओं को अधिक गम्भीरता के साथ प्रस्तुत किया है।[1]

मिथ्या आडम्बर और झूठी प्रतिष्ठा:

मध्यवर्गीय व्यक्ति की सबसे बड़ी समस्या-अर्थ की समस्या है। किन्तु उच्चवर्ग की प्रतिष्ठा, साधन-सम्पन्नता सदा उसकी निगाह में चढ़ी रहती है और वह उस स्थिति तक पहुंच पाने का लगातार प्रयत्न करता रहता है। यदि उसे लगता है कि उस स्थिति तक पहुंच पाना असंभव है तो वह उसकी नकल करके ही मिथ्या आडम्बर के द्वारा प्रतिष्ठा पाना चाहता है। इस सबका उसे बहुत भयंकर मूल्य भी चुकाना पड़ता है यानि उच्चवर्ग की नकल करके झूठी प्रतिष्ठा समेटने के चक्कर में वह कर्ज़ में डूब जाता है और इज्ज़त जुगाते-जुगाते उघड़ जाता है या फिर भ्रष्टाचार, अन्याय और शोषण के मार्ग की ओर अग्रसर होता जाता है। मध्यवर्ग की इसी समस्या को केन्द्र बनाकर यशपाल ने बहुत सी कहानियां लिखी हैं जिनमें परदा, चार आने, गर्मी में सर्दी, लखनऊ वाले, दीनता का प्रायश्चित आदि प्रमुख हैं। इनमें भी सबसे महत्वपूर्ण कहानी है--'परदा'। इस कहानी के केन्द्र में एक ऐसा मुसलमान परिवार है जो निर्धन होते हुए भी समाज में सम्मान प्राप्त करना चाहता है। कहानी में चौधरी पीरबख्श के परिवार की गरीबी का दयनीय चित्रण है जो उस परिवार के लिए अभिशाप बन गई है लेकिन इससे भी अधिक दयनीय है उनका झूठी प्रतिष्ठा बनाए रखने का वह मोह जिसे वह अन्त तक नहीं छोड़ पाते। चौधरी साहब के घर में खाने के लिए भोजन और स्त्रियों तक

1- मिश्र, प्रकाश चन्द्र : यशपाल का कथा-साहित्य, पृष्ठ-176

के लिए तन ढंकने का कपड़ा नहीं है लेकिन मुहल्ले में अपना दबदबा बनाए रखने के लिए वह अपने बुजुर्गों की मूल्यवान निशानियां बेचते रहते हैं। एक स्थिति वह आती है कि चौधरी साहब न केवल अपनी खानदानी मूल्यवान वस्तुओं से वंचित होते हैं, कर्ज से भी बुरी तरह दब जाते हैं। घर के भीतर का क्या हाल है यह मुहल्ले वाले नहीं जान सकते क्योंकि दरवाजे पर बुजुर्गों की अंतिम मूल्यवान निशानी बचा हुआ कालीन परदा बनाकर लटका दिया गया है। पर उनकी औढ़ी हुई, उधार की प्रतिष्ठा का नकाब तब उतरता है जब कर्ज देने वाला पठान पैसे वापस न मिलने के कारण गालियां बकता हुआ घर के दरवाजे पर आ जाता है, चौधरी साहब के घर के भीतर मुंह छिपाए घुसे रहने पर क्रोध में दरवाजे से कालीन का परदा झटक कर अलग कर देता है। परदे के भीतर की असलियत देखकर मुहल्ले वालों की आखें शर्म से बन्द हो गईं और सूदखोर पठान का कलेजा भी दहल गया। "ड्योढ़ी से परदा हटने के साथ ही जैसे चौधरी के जीवन की डोर टूट गई। वह डगमगा कर जमीन पर गिर पड़े। चौधरी में उस दृश्य को देखने की ताब न थी पर द्वार पर खड़ी भीड़ ने देखा -- घर की औरतें और लड़कियां परदे के दूसरी ओर घटती घटना के आतंक से आंगन के बीचों-बीच भय से इकट्ठी खड़ी होकर कांप रही थीं। सहसा परदा हट जाने से औरतें ऐसे सिकुड़ गयीं जैसे उनके शरीर का वस्त्र खींच लिया गया हो। वह परदा ही तो घर भर की औरतों के शरीर का वस्त्र था। उनके शरीर पर बचे चीथड़े उनके एक-तिहाई अंग ढंकने में भी असमर्थ थे।"[1] इस कहानी में परदा प्रतीक है झूठे मोह और जर्जर संस्कारों का जिन्हें मध्यवर्ग का व्यक्ति छोड़ नहीं पाता, यही वह स्थिति है जो यशपाल के तीखे व्यंग्य और प्रहार का निशाना बनती है।

1- तर्क का तूफान (संग्रह), पृष्ठ-131-132

इसी तरह की एक कहानी है --'चार आने' । इसका प्रमुख पात्र भी एक ऐसा ही व्यक्ति है जो अर्थ के अभाव से ग्रस्त है लेकिन फिर भी समाज में अपने लिए प्रतिष्ठित स्थान बनाना चाहता है । वह राजा साहब पर तो अपनी झूठी प्रतिष्ठा का प्रभाव डाल पाने में सफल हो जाता है लेकिन जेब में चार आने पैसे तक न होने की मजबूरी में कुली के समक्ष अपना झूठ खुल जाने से डरता है । 'गूंगी में खुशी' के नवाब नबी रज़ा भी विपन्न हैं । उनके पास एक मुर्गा है जो एक अन्य मुर्गे से लड़ाई में जीत जाता है, इसी खुशी में मित्र नवाब साहब से दावत की फरमाइश करते हैं । नवाब साहब की दिक्कत यह है कि नवाब कहलाते वह जरूर हैं मगर अब न तो नवाबी ठाठ-बाट रहे और न पुराने ज़माने, अब तो हालत यह है कि कभी-कभी पेट भर भोजन तक के लाले पड़ जाते हैं । दूसरी ओर यदि वह दावत नहीं दे पाते हैं तो मित्रों में उनकी झूठी नवाबी शान का भेद खुल जाता है । वह सोचते हैं कि न मुर्गा जीतता और न उनकी इज्ज़त दाव पर लगती । रात भर परेशान रहने के बाद सुबह वह देखते हैं कि मुर्गा बिल्ली द्वारा मार दिया गया है । नवाब साहब को गहरा दुख होता है लेकिन साथ ही वह दावत देने की समस्या से भी मुक्त हो जाते हैं । 'नवाब साहब ने रोती हुई बेगम को बाहों में सम्भाल लिया और खुद भी रो उठे --' या परवरदिगार , मेरे दिलपज़ीर (मुर्गे) की गुमी में ही हम गुनहगारों के लिए निजात थी? ' और फिर दिलपज़ीर के बदन पर हाथ रखकर रोने लगे, 'मेरे बेटे, जिन्दा रह कर तूने हमें इज्ज़त बख्शी और हमारी इज्ज़त बचाने के लिए तूने जान दे दी ।'[1] पैसे की इसी समस्या से जूझते रहते हैं 'लखनऊ वाले' जफ़र मियां । पर वह भी अपने लिए प्रतिष्ठा जुटाने का एक भी मौका हाथ से गंवाना नहीं चाहते । छुट्टी के दिन भी वह इसी लिए अपने बड़े अफसर के यहां शतरंज खेलने जा रहे

1- तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूं (संग्रह), पृष्ठ-103

थे । लेकिन कीचड़ के छींटे पड़ जाने से उनके कपड़े खराब हो गए इसलिए उन्हें इक्के पर बैठकर वापस घर लौटना पड़ा । इक्केवाला उन्हें घर के दरवाज़े पर ही छोड़ना चाहता है ताकि मज़दूरी नकद ले सके । 'ज़फ़र मियां भी समझ गए कि इक्के वाला चार आना उधार नहीं छोड़ना चाहता । इस समय सवारी के लिए चार आने देना बीबी को खल जाएगा । महीने की आखिरी तारीखों में चार आने से दो दिन साग-चटनी का निर्वाह हो सकता था पर मज़बूरी थी ।'[1] मन को समझाया तो 'सोच लिया, खैर--- पड़ोसी देख लेंगे, सवारी पर लौट रहे हैं ।'[2] ज़फ़र मियां की यह मज़बूरी बहुत दयनीय है लेकिन पड़ोसियों में प्रतिष्ठा बढ़ जाएगी चाहे मौजूद न भी मिले - यह झूठा मोह उनके मध्यवर्गीय चरित्र को स्पष्ट कर देता है ।

प्रतिष्ठा प्राप्ति की भूख का एक अन्य रूप 'दीनता का प्रायश्चित' में दिखाई पड़ता है । मध्यवर्गीय सदानन्द की समस्या यह है कि पढ़ा-लिखा और प्रतिभाशाली होने पर भी वह जन्म से एक चपरासी का बेटा है । उसे सदा यह महसूस होता है कि एक चपरासी का बेटा होने की वजह से वह उस सम्मान-जनक स्थिति को प्राप्त नहीं कर सकता जिसे वह अपनी योग्यता के बल पर बड़े लोगों में प्राप्त करना चाहता है । अपने पिता की सामाजिक और आर्थिक स्थिति के कारण उसे जगह-जगह अपमानित होना पड़ता है ।

सामाजिक भ्रष्टाचार : मुनाफ़ाखोरी:

प्रतिष्ठा प्राप्ति की भूख और हीनभावना से ग्रस्त रहने के कारण व्यक्ति को ऐसा बहुत कुछ करना पड़ता है जिससे वह गलत-सही किसी भी

1- सच बोलने की भूल (संग्रह) पृष्ठ-112

2- --वही--- ,, ,, पृष्ठ-112

ढंग से पैसा कमा सकें और उच्चवर्गीय व्यक्ति के समान घर, शानो-शौकत और दबदबा रख सकें । इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए वह जो रास्ता पकड़ता है वह भ्रष्टाचार का रास्ता होता है । वहाँ धन न केवल मिलता है बल्कि बिना परिश्रम किए एक शार्ट-कट से मिल जाता है । ऐसे मुनाफाखोर भ्रष्टाचारी पात्र यशपाल की 'रोटी का मोल' कहानी के सेठ जी हैं । उनका गोदाम हजारों मन अनाज से भरा पड़ा है जबकि राशन की दुकानें खाली हैं । जनता दाने-दाने की मोहताज है लेकिन सेठ जी के गोदाम का अनाज चाहे चूहे खा जाएं भूखी जनता को उसमें से कुछ नहीं मिलेगा । उसमें इस काम में लगे रहने के लिए वह नौकर रामगोपाल को "पूड़ी खिलाने को तैयार थे"[1] क्योंकि उसी के हाथ में उनके छिपे गोदामों की चाभी थी । लेकिन उसी रामगोपाल के बीबी और बच्चे आम अन्य जनता की तरह मोहताज हैं । ऐसी ही कहानी है 'महादान', जिस एक मुट्ठी अनाज के लिए जनता तड़प रही है वह सेठ जी के गोदाम में तेज़ी की प्रतीक्षा कर रहा था और जब बाज़ार में उसका मूल्य-ड्योढ़ा-दोगुना हो गया तब वह बाजार में आ गया । सेठजी का छिपा रूप तो चोरबाजारी का था लेकिन यशपाल लिखते हैं कि वह थे बड़े महादानी । उन्होंने बाज़ार में आदमियों के मक्खी-मच्छर की तरह पटापट मरने की खबरें सुनी और जब वह सुनते कि लोग लकड़ी महंगी हो जाने की वजह से लाशें दाह-संस्कार किए बिना ही छोड़ जाते हैं तो उनकी आंखों से आंसू बह जाते थे । "द्रवित हो कर उन्होंने धर्मादय में से कंगालों के लिए दो बोरी चना रोज बंटवाने का आदेश दिया और बीस हजार की लकड़ी भी (दाह-कर्म के लिए) घाट पर गिरवा दी । ---सेठजी का नाम चित्र सहित समाचार-पत्र में आ गया --- महादान । सेठ परसादीलाल टल्लीमल का महादान --- ?"[2]

1- अभिशप्त (संग्रह) पृष्ठ---

2- भस्मावृत चिन्गारी (संग्रह) - पृष्ठ-28

<u>घूसखोरी:</u>

भ्रष्टाचार का ही दूसरा रूप है - घूसखोरी । रिश्वत के रूप में पैसा कमाने और इस प्रकार उच्चवर्ग की समकक्षता का दावा करने के प्रयत्न में सरकारी नौकर, ओवरसियर, वकील, दारोगा, इंजीनियर आदि सभी लोग लगे हैं । यशपाल की 'मक्खी और मकड़ी' कहानी में यही चित्रित है । समाज में बढ़ती जाती धांधली का जाल जो लोग बुनते हैं वह मकड़े हैं और उसमें फंसने वाला साधारण आदमी मक्खी है, लेकिन यह मक्खी व्यवस्था से तंग आकर स्वयं भी धीरे-धीरे मकड़ी बन जाती है और दूसरों को तंग करती है, इस तरह ये क्रम चल निकलता है । कहानी में सिर्फ दारोगा और ओवरसियर ही नहीं बल्कि समाज में नैतिकता की डूबती नैया को बचाने का कार्य करने वाले वकील तक घूस के द्वारा नौका में छिद्र कर रहे हैं । नौकर लड़का 'ओवरसियर की नोटों की बड़ी-बड़ी गड्डियां घर लाते देखता था' इसलिए उसने काले धन में से चोरी की, उस धन की रिपोर्ट लिखवाते तो ओवरसियर खुद फंस जाते इसलिए उन्होंने सामान की चोरी की रिपोर्ट लड़के के विरुद्ध लिखा दी, वकील साहब द्वारा घेर लिए जाने पर काले धन का एक बड़ा हिस्सा उन्हें देना चाहा, 'दारोगा से अपनी रिपोर्ट का चालान रद्द करवाने के लिए ओवरसियर ने पूरे पांच सौ पूजे'[1] और वकील साहब ने मामला रफ़ा-दफ़ा कराने के लिए 'आसामी से तीन सौ और लिए'[2] इस तरह किसी को पता भी न चला और जेबें भी गरम हो गयीं ।-- यह है समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार -- जो भी इसके घेरे में आ जाएगा - इसी का होकर रह जाएगा ।

'चोरबाज़ारी' और 'कम्बलदान' कहानियों में भी यशपाल का उद्देश्य यही दिखाना है कि पूंजीपति वर्ग यदि व्यापार और पैसे के

1- खच्चर और आदमी (संग्रह) पृष्ठ-26-27

2- --वही-- ,, ,, पृष्ठ-27-28

बल पर मुनाफा कमाना चाहता है, तो मध्यवर्ग घूसखोरी और रिश्वत से पैसा कमा लेता है । भ्रष्टाचार समाज में इस कदर व्याप्त है कि अब साधारण जन को सरकारी अफ़सरों और सरकारी संस्थानों तक का भरोसा नहीं रहा । 'चार सौ बीस' कहानी का गोपालदास राशन न मिलने की चोरबाज़ारी और अंधेर को रोकने में सरकार की मदद करना चाहता है । इसलिए वह राशनिंग अफ़सर को टेलीफोन द्वारा धांधली की सूचना देना चाहता है । राशनिंग अफसर के टेलीफोन का नम्बर है 420, इस वजह से उसके साथी हंसते हैं कि 'जब वह खुद ही अपने को चार सौ बीस कह रहे हैं तो उनसे क्या शिकायत की जाए ।'[1]

अर्थ से परिचालित मानव सम्बन्ध:

भ्रष्टाचार समाज को ही नहीं नैतिकता को भी खा चुका है और अब मानव के कोमलतम भावनात्मक सम्बन्ध भी इसी की बलि चढ़ रहे हैं और आज के व्यक्ति का यह सब स्वभाव बन चुका है जिसमें उसे किसी प्रकार की शर्म भी नहीं आती । यशपाल की 'दाग ही दाग' कहानी में आज के समाज में व्यक्ति के सम्बन्धों का यही स्तर उद्घाटित हुआ है । यहां रिश्वत के रूप में धन या पदार्थ नहीं है बल्कि व्यक्ति की अपनी पत्नी का शरीर है , जिसका सौदा कर पति महाशय अपने लिए समाज में प्रतिष्ठा खरीदना चाहते हैं और आश्चर्य तो तब है जबकि वह पत्नी भी इसका विरोध करने की जगह इसमें अपना सहयोग ही दे रही है । मि० सिंह एक अधिकारी हैं जो एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के विरुद्ध भ्रष्टाचार और घूसखोरी के आरोप की जांच कर रहे हैं । सिंह इस आरोप की सत्यता जान चुके हैं और इसी लिए वह उसे दण्ड दिलवाना चाहते हैं ।

1- धर्मयुद्ध (संग्रह) - पृष्ठ

रिपोर्ट देने के एक दिन पूर्व उनके घर कालेज की मित्र, जिसे शायद वह प्रेम भी करते थे, आती है और पुनः प्रेम का एक नाटक रचती है तथा स्वयं को सिंह के समक्ष समर्पित कर देती है । सुबह उस आवेग से निकल कर सिंह निश्चय करते हैं कि अब उन्हें उससे विवाह कर लेना चाहिए । मधुर कल्पनाओं में खोए सिंह को यथार्थ का झटका तब लगता है जब उसे ज्ञात होता है कि रुबी अपने समर्पण के मूल्य रूप में उसी व्यक्ति को मुक्त करवा देने का अनुरोध कर रही है, जो उसका पति भी है । प्रेम और समर्पण जैसी भावनात्मक स्थिति के पीछे की वास्तविकता सामने आने पर सिंह स्तम्भित हो जाते हैं ।

समाज में डाक्टरी का सम्मानित पेशा करने वालों की वास्तविकता का भी यशपाल के यहां पर्दाफाश हुआ है । डाक्टर 'कहानी में चेतन के रूप में वह स्वार्थी डाक्टर है जो पेशे को बदनाम करता है और बनिये की तरह व्यवहार करता है । बनिया बाज़ार में सामान की कमी का, वकील अपने मुवक्किल का जिस तरह फायदा उठाया करते हैं डाक्टर भी उसी तरह अपने रोगियों से उनकी जान की कीमत वसूल करते हैं । जिस व्यक्ति के हाथों जीवन का दान मिलना चाहिए वह उन्हीं हाथों में जीवन बचाने की पूरी कीमत आने के पहले आदमी को मौत से बचाना तो क्या उसे मरते देखना भी नहीं चाहता । अपने सम्मानित पेशे की आड़ में वह घिनौना कार्य करने में नहीं हिचकता क्योंकि उसे भी एक ही धुन है-- पैसा कमाना ।

परिस्थिति जन्य विवशता से व्यक्ति का समझौता:

शोषण का एक अन्य रूप है 'जाबूते की कार्यवाही ' में । छूत के कीटाणुओं से युक्त वर्दियां मास्टर शर्मा गोदाम में नहीं रखना चाहते किन्तु प्रचार्य के दबाव की वजह से उन्हें वह वर्दियां उसी हाल में रखनी पड़ती हैं । छुट्टियां समाप्त होने पर वही वर्दियां लड़कों में बांट दी जाती हैं और लड़के चेचक का शिकार हो जाते हैं । स्थिति से बचने

के लिए इसकी सारी जिम्मेदारी प्राचार्य अपने पद का लाभ उठाकर मास्टर पर लाद देते हैं। नैतिकता और ईमानदारी के लिए मास्टर शर्मा को प्राचार्य की डांट और नौकरी से निकाले जाने की धमकी मिली थी लेकिन अब यदि वह सारी जिम्मेदारी अपने सिर ले लें और प्राचार्य को बचा लें तो उन्हें तरक्की की घूस दी जा रही थी। ऐसी स्थिति में जीत सदा शोषक की होती है क्योंकि एक व्यक्ति से यह अपेक्षा करना कि वह सत्य पर अडिग रहे चाहे नौकरी ही छोड़ देनी पड़े गलत है। रोज़मर्रा की समस्याओं से जूझते-जूझते अब उसमें अन्याय से लड़ने की शक्ति नहीं बची है इसलिए वह विवश हो पूंजीपति या शोषक वर्ग के हाथों का खिलौना बन जाता है। 'रोटी का मोल' का रामगोपाल और 'जाबूते की कार्यवाही' के मास्टर शर्मा ऐसे ही खिलौने हैं जो भीतर से चाहें विद्रोह करें किन्तु उनका परिवार और स्वयं का व्यक्तित्व बाह्य रूप से कोई भी विद्रोह करने का साहस नहीं करने देते।

कृत्रिम और दोगला जीवन:

यशपाल की कहानियों के मध्यवर्गीय पात्र कृत्रिम और दोगला जीवन जीते हैं। 'गुलबाई दर्ददिल' का रणजीत वैसे तो नायिका से प्रेम दर्शाता है लेकिन रिक्शे वाले के प्रति उसके मन में कोई संवेदना नहीं। मानवीयता का एक कच्चा सूत्र भी अब व्यक्ति में नहीं रह गया है बस हर चीज़ में उसका मतलब सिद्ध हुआ कि बाकी कुछ नहीं रहता। 'कुत्ते की पूंछ' की नायिका भी दोतरफा जीवन जीती है। आदर्श को रूप देने के चक्कर में एक गरीब बालक पर दया कर घर तो ले आती है लेकिन उस पर वह दया ही करती रहना चाहती है। बालक समानता का व्यवहार करे या चाहे यह उसे असह्य है।

उच्चमध्यवर्ग के कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो हमेशा दुखी दिखना चाहते हैं उन्हें इसमें भी विशिष्टता नज़र आती है । बाकी समाज में चर्चा का विषय भी बन जाते हैं विशिष्ट भी हो जाते हैं । इसलिए वह कुछ दुख ओढ़ लेते हैं वह सामाजिक अव्यवस्था के प्रति भी हो सकता है और पारिवारिक अव्यवस्था का भी । वास्तविकता तो यह है कि दुखी रहना अपने आप में एक शगल है अन्यथा सुविधा संपन्न जीवन जीने वालों को क्या पता कि दुख, असल में होता क्या है ? उन्हें तो प्रेम में रूठ जाने और मनाने की बात भी संसार का सबसे बड़ा दुख लगती है । "दुख" का नायक दिलीप है जिसकी पत्नी झगड़कर रूठ गई और पिता के घर चली गई । इस कारण वह दुखी है । सर्दी की रात में सड़क पर जब वह एक बालक को सौदा बेचते देखता है और उसके बाद बालक और उसकी मां के वार्तालाप को सुनता है तब उसे ज्ञात होता है कि दुखी वास्तव में कौन हैं और दुख है किस चीज़ का नाम । सुविधापरस्त लोग भूख न होने पर फल खाते और दूध पीते हैं लेकिन कुछ लोग ऐसे भी हैं भूखे होते हुए भी जिनके पास खाने को नहीं वह क्या करे ?

रूठ कर मायके गई पत्नी का पत्र उसे मिलता है कि "मैं जीवन में दुख ही देखने के लिए पैदा हुई थी" तो वह पत्र फाड़ देता है और क्षुब्ध होकर मुख से निकलता है "काश, तुम जानती दुख किसे कहते हैं ।"[1] "कर्मफल" की सेठानी जी भी इसी अपने कृत्रिम दुख की शिकार हैं । उनकी अपनी बच्ची बीमार है उसका दुख दूर करने के लिए वह असह्य बिन्दी को बीमार बच्चे सहित कोठी के बरामदे से सर्दी की बरसाती रात में बाहर भगा देती है । उसका अपराध इतना ही है कि वह भी दुख की मारी है और उसका बीमार बच्चा रो रहा है जिस कारण सेठानी की बच्ची की नींद में खलल

1- पिंजरे की उड़ान (संग्रह) - पृष्ठ-142 ।

पड़ रहा है । सर्दी और बरसात में आश्रय के अभाव में बिन्दी का बच्चा ठिठुर कर दम तोड़ देता है लेकिन फिर भी उसे दुख मनाने का अधिकार नहीं । वह यदि चिल्लाएगी-रोएगी तो सेठानी की बच्ची जाग जाएगी । सेठानी ईश्वर से प्रार्थना कर रही है " मेरी बेटी का कष्ट दूर करो भगवान, जिसने मेरी बेटी की नींद बिगाड़ दी उसका सत्यानाश हो ।"[1] अमानवीयता का उच्चतम स्तर है और उसपर भी कर्मफल का परदा डाल दिया जाता है और अपना स्वार्थ सफलता से छिपा लिया जाता है । "न्याय का दण्ड " "दुख का अधिकार " आदि कहानियों में भी यही स्वार्थीपन, शोषण और अमानवीयता चित्रित है ।

मानवीय सम्बन्धों में उपयोगितावादी दृष्टिकोण :

मध्यवर्ग का यही स्वार्थीपन और अमानवीय व्यवहार उनके सम्बन्धों में भी दिखाई पड़ता है । आपसी संबंधों की चर्चा में इनमें उपयोगिता का एक तत्व और जुड़ जाता है । जब तक व्यक्ति धन उगाहने योग्य रहता है तब तक समाज और परिवार में सम्मान पाता है, पूछा जाता है, लेकिन वृद्ध होकर, रिटायर होकर उसके सम्बन्धों का स्वरूप क्या हो जाता है इसका चित्रण "समय " कहानी में किया गया है । कहानी का पात्र नायक रिटायर्ड वृद्ध है । परिवार में केवल वही एक अनुपयोगी या फालतू प्राणी है । उससे किसी को कुछ प्राप्त होने वाला नहीं इसलिए अब कोई उसके पास उठना-बैठना तक पसंद नहीं करता । मानवीय संबंध अर्थ की कसौटी पर कसे जाते हैं इसलिए जो बच्चे पहले पिता के साथ घूमने जाने को लालायित रहते थे उन्हें अब वृद्ध पिता के पास बैठना

1- पिंजरे की उड़ान (संग्रह) पृष्ठ---

तक 'बोर होना' लाता है ।

बेरोजगारी की समस्या :

नवयुवकों की भी बहुत समस्या है जो बेरोज़गार हैं । उनका भी समाज में सम्मान नहीं है, उन्हें बोझ समझा जाता है, नाते-रिश्तेदार और यहां तक कि परिवार जन-माता-पिता, भाई-बहन तक उनसे कतराते हैं । बेरोज़गारी के कारण युवकों की प्रतिभा का शोषण कैसे होता है इसका चित्र 'भूख के तीन दिन' कहानी में मिलता है । बेरोज़गारी और बदहाली से तंग आकर प्रतिभाशाली युवा की प्रतिभा क्या रूप अख्तियार कर लेती है और उसका क्या हाल होता है यह भी विचार का विषय है । 'निरापद' कहानी भी इसी बेरोज़गारी की समस्या को लेती है जो दिन-प्रतिदिन विकराल रूप में सामने आ रही है ।

धार्मिक अंधविश्वास और आडम्बर:

मध्यवर्ग की एक और खासियत यह है कि चाहे पढ़-लिख जाए और सभ्य कहलाना चाहे लेकिन फिर भी इस वर्ग का व्यक्ति धर्म और समाज से डरने वाला, अन्धविश्वासी है और रूढ़िवादी तथा परम्परा प्रेमी है । यही वह बंधन है जो उसका जीवन दुखमय बनाते हैं, स्वाभाविक रूप से जीवन को जीने में बाधक होते हैं । यशपाल इस सत्य को स्वयं भी जानते थे और इसलिए इसका विरोध करते थे । उन्हें जहां भी अवसर मिलता रूढ़ियों, धार्मिक अन्धविश्वासों की धज्जियां उड़ाने से वे चूके नहीं और इसके लिए उन्होंने व्यंग्य को माध्यम बनाया । इनकी एक कहानी है 'देवी की लीला' । इसका नायक देवी-दयाल साधारण कर्मचारी है, मुश्किल से पैसा-पैसा जोड़कर वह एक

साइकिल खरीदता है । पैदल चलने की उसे आदत है इसलिए साइकिल पान की दुकान पर भूल जाता है, याद आने पर वह देवी को प्रसाद चढ़ाने का संकल्प कर साइकिल खोजने जाता है और साइकिल मिल जाती है । देवी की इस कृपा के लिए प्रसाद चढ़ाने जब मंदिर जाता है तो उसकी साइकिल चोरी हो जाती है । पेट काट कर खरीदी साइकिल के मंदिर से चोरी हो जाने की बात पर क्षुब्ध होकर उसकी पत्नी देवी को कोसती है किन्तु समाज के भय से इसे देवी की लीला मान उन्हें चुप रह जाना पड़ता है । 'मन की पुकार' में भी अन्त में देवी से विश्वास उठता दिखाया गया है । 'मनु की लगाम' में यशपाल यज्ञोपवीत और ब्राह्मणों की उच्चता के विश्वास का खण्डन करते हैं । धार्मिक आडम्बरों का पर्दाफाश करने के लिए 'तूफान का दैत्य' 'भगवान किसके', 'चोरी और चोरी', 'मिट्ठो के आंसू', 'उद्यमी की मां,' 'कुलमर्यादा', 'विश्वास की बात' और 'खुदा की मदद' की रचना की गई है । 'खुदा की मदद' कहानी में उन लोगों पर व्यंग्य किया गया है जो अपनी शक्ति और योग्यता की बजाय भगवान के सहारे पर विश्वास रखते हैं और बिना कोई उद्योग किए भगवान की कृपा से सब कुछ पा लेना चाहते हैं । उबैदुल्ला और इम्तियाज़ बचपन से साथ पढ़ते थे, उबैद पढ़ाई में ज्यादा होशियार था, अच्छे अंक प्राप्त करता था । लेकिन पढ़ाई खत्म होने के उपरान्त इम्तियाज़ को उबैदुल्ला से अधिक अच्छी नौकरी मिलती है क्योंकि वह उबैदुल्ला की तरह खुदा की मदद पर भरोसा रखकर बैठ नहीं जाता । खुदा पर भरोसा उसे भी है लेकिन वह यह भी जानता है कि जो अपनी मदद आप नहीं करता उसकी खुदा भी मदद नहीं करता । वह कम योग्यता रखते हुए भी उद्यमी है इसलिए वह हर क्षेत्र में उबैदुल्ला से अधिक सफल रहता है ।

धार्मिक अन्धविश्वास और आडम्बर :

'उत्तमी की मां' धार्मिक अंधविश्वासों, सामाजिक नैतिकताओं के बन्धनों से उत्पन्न विकृतियों की कहानी है । यशपाल मानते हैं कि व्यक्ति के जीवन में यौवन का महत्व है और साथ ही महत्वपूर्ण है यौवन की स्वाभाविक इच्छाएं । इन स्वाभाविक इच्छाओं का दमन करना समाज में नैतिक होने का प्रमाण है किन्तु हम यह क्यों भूल जाते हैं कि इन इच्छाओं के दमन से जीवन का स्वस्थ विकास सम्भव नहीं रहता । जो समाज में बहुत नैतिक और चरित्रवान व्यक्ति माने जाते हैं वह भी छिपा कर अपनी यह इच्छाएं पूरी कर ही लेते हैं और इसमें सबसे बड़ा सहारा वहां धर्म का रहता है । यशपाल के विचार में तप और सिद्धि करने वाले योगी तक सांसारिक विषय वासनाओं से मुक्त नहीं रह सकते । इसलिए वह ढोंग करते हैं । कहानी की पात्र उत्तमी का उद्दाम यौवन उसे अपने शरीर की इच्छाएं पूरी करने को बाध्य करता है जब उस पर प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं तो फिर वह स्वस्थ नहीं रह पाती । वह सहारा लेती है योग-सिद्धि का और प्राण त्याग देती है । 'सत्संग की भक्ति ने उत्तमी के सूखे शरीर और धंसी आंखों में तेज देखती थी और मां के सामने ही उत्तमी ने तड़पकर प्राण त्याग दिए । भक्तिनों के लिए उसका अंतिम सांस लेना ब्रह्म में लीन हो जाना था जबकि मां को इसमें परम आनन्द का कोई भाग नहीं दीखा । धार्मिक विचारों और संस्कारों से बंधा व्यक्ति अपने प्राण त्याग सकता है किन्तु तथाकथित विधर्मी कृत्य करके अपने प्राण तक बचा पाना उसके लिए अपने समाज में सम्भव नहीं । इसका ही एक उदाहरण है 'जीवदया' । आवश्यक होने पर भी बच्चे की जीवनरक्षा के लिए मास्टर जी ने अण्डे का प्रयोग नहीं किया और भगवान के भरोसे बैठे रहे । उनकी दृष्टि में उस सर्वशक्तिमान भगवान की जो इच्छा होगी वही होगा और वही हुआ कि बच्चा भी जाता रहा और पत्नी

भी धार्मिक विश्वासों की बलि चढ़ गई । 'सच्चर और आदमी ' का कथानक भी ऐसा ही है । कहानी में यशपाल ने सच्चर (पशु) और आदमी का भेद दिखाया है । सच्चर पशु होने के कारण अपना प्राण बचाने के लिए जो संभव है वह करता है । जब सच्चरों के खाने के लिए कुछ नहीं बचता तो वह अपने ही में से कमजोर सच्चर को मार कर खा लेते हैं इस प्रक्रिया के चलते अन्त में सबसे बलशाली केवल एक सच्चर बचता है जो अपने प्राण बचा सकने में सफल हो गया लेकिन धार्मिक विश्वास , मान्यताओं और संस्कारों से बंधा व्यक्ति अपने प्राण बचाने की कीमत पर भी अपना धर्म नहीं छोड़ पाता ।

सामाजिक रूढ़ियां और परंपरा प्रेम :

'कुलमर्यादा ' कहानी एक रोचक कथानक पर आधारित है इसमें पर्दा-प्रथा पर प्रहार किया गया है । पर्दे में रहने (घूंघट) के कारण गंगाधर विवाह के पश्चात् कई दिन साथ रहने के बावजूद अपनी पत्नी का चेहरा नहीं देख सका । फिर वह पत्नी को लेकर शहर आ गया और शहर की भीड़-भाड़ में पत्नी खो गई । इस तरह एक रोचक स्थिति सामने आई कि उसने जिस पत्नी को देखा तक नहीं उसे शहर में ढूंढे कैसे ?

किसी-किसी कहानी में कुछ पात्र साहस कर संस्कारों से समाज से टक्कर लेते भी हैं जैसे मन की पुकार और 'देवी की लीला ' के पति-पत्नी का देवी पर से विश्वास उठ जाता है या फिर 'उल्मी की मां ' उल्मी की यौन-विषयक समस्या को समझकर उसका उपचार करने के विभिन्न प्रयास करती है -- लेकिन ऐसे कुछ ही व्यक्ति हैं जिन्हें अकेले ही लड़ना पड़ता है ।

इन सभी कहानियों के माध्यम से यशपाल समाज की निर्धारित नैतिकता और मूल्यों पर प्रश्न-चिह्न लगाते हैं । प्रश्न यह है कि नैतिक

मर्यादा को समाज ने बना तो दिया पर इनके परिणामस्वरूप जो विकृतियां और समस्याएं सामने आती हैं उनका निदान क्या समाज के पास है -- ?

---00000---

चतुर्थ अध्याय

यशपाल की कहानियां और मध्यवर्गीय नारी

चतुर्थ अध्याय

यशपाल की कहानियां और मध्यवर्गीय नारी

मध्यवर्गीय नारी की समस्याएं :

मध्यवर्ग के व्यक्तियों और उनकी समस्याओं की बात करते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मध्यवर्ग में समस्याएं केवल पुरुष-वर्ग की ही नहीं है । समाज का एक हिस्सा पुरुष-वर्ग है तो दूसरा हिस्सा नारी-वर्ग भी है । जिसने सदा पुरुष को आधार दिया है, जिसने अपनी इच्छा-अनिच्छा को कभी महत्व न देकर पुरुष की हर इच्छा-अनिच्छा का सम्मान किया परन्तु सामन्तवादी व्यवस्था के भीतर रहने वाले पुरुष ने उसके त्याग की महानता को नज़र अन्दाज़ कर दिया ब्याह से पूर्व पिता और भाई ने, ब्याह के बाद पति और पुत्र ने उसे चारदीवारी के भीतर कैद कर दिया । उससे कुछ भी कहने का, अपनी इच्छा-अनिच्छा व्यक्त करने का अधिकार छीन लिया और उस पर तरह-तरह के अत्याचार किए । घर के भीतर कैद होने से जिसने इन्कार किया उसे वेश्या का रूप धरना पड़ा, ढंग बदल गया किन्तु होता रहा अत्याचार ही ।

समय के परिवर्तन और शिक्षा प्रचार के फलस्वरूप मध्यवर्ग का व्यक्ति अब समझदार हो गया है और दकियानूसी बातें धीरे-धीरे छोड़ रहा है । लेकिन यहां भी उसका दोगुलापन नज़र आ जाता है । पुरुष वर्ग अपने लिए हर प्रकार की सुख-सुविधाएं चाहता है और कुछ हद तक आधुनिक भी है । घर के बाहर जो मन आए करना, लड़कियों से दोस्ती करना, घूमना-फिरना उसे पसंद है लेकिन यही सब यदि स्त्री भी चाहने

लो तो उससे सहन नहीं होता । जबकि दूसरी ओर स्थिति यह है कि समय और समाज के परिवर्तन के साथ ही नारी ने अपनी स्थिति को समझना शुरू किया । अवसर मिलने पर वह खुली और खुलकर सांस लेने के साथ ही उसमें स्वतंत्रता से जी सकने की इच्छा भी जागी । जब उसे मौका मिला कि वह भी पढ़-लिख सके और जीवन में कुछ कर सके तो उसने पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर चलना शुरू किया । अब उसकी अपनी भी कुछ इच्छाएं थीं, आकांक्षाएं थीं, जिन्हें वह पूरा करना चाहती थी । किन्तु समान पढ़ी-लिखी , समझदार तथा कमाने वाली स्त्री को पति आज भी अपनी सम्पत्ति ही मानता है । वह स्वयं पत्नी के अतिरिक्त अन्य कितनी भी स्त्रियों से प्रेम-सम्बन्ध बना सकता है किन्तु स्त्री-पति के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष से घुल-मिलकर बात करे या प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करे, यह बात उसके गले नहीं उतरती । इसी लिए आज समाज में हमें नारी विभिन्न रूपों में प्राप्त होती है । कहीं वह चुपचाप अत्याचार सहती रहने वाली पतिव्रता है, कहीं अत्याचारों से बचने के लिए घर से भाग जाती है कभी आत्महत्या कर लेती है, कहीं पढ़ी-लिखी और समझदार होने पर भी पति के अत्याचार सहती है, तो कहीं समझदारी से उससे अलग हो जाती है और कभी सारा जीवन अपनी महत्वाकांक्षाओं को जी सकने के लिए विवाह के झंझट में ही नहीं पड़ना चाहती जब आवश्यक होता है तो अपनी इच्छाएं पूरी कर लेती है ।

यशपाल नारी-स्वतंत्रता के बहुत बड़े समर्थक हैं । यही वजह है कि इनके साहित्य में नारी को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है । वह नारी को उसके पारम्परिक स्वरूप और ढांचे से निकालना चाहते हैं । वह चाहते हैं कि नारी अपने अस्तित्व को पहचाने और उसे अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने का अवसर और अधिकार मिले । उनकी

कहानियों में नारी के प्राय: सभी उपलब्ध स्वरूप चित्रित हैं किन्तु उनके साहित्य का महत्वपूर्ण अंग- सजीव, सुशिक्षिता, स्वतंत्र और महत्वाकांक्षी नारी है, जो अपने अधिकारों के लिए लड़ने की सामर्थ्य रखती है। वह समाज के समक्ष ऐसी नारी का आदर्श रखना चाहते हैं जो अपने जीवन को जीने की पद्धति, अपनी दिशा और अपने जीवन-साथी का स्वयं चुनाव कर सके। नारी के विविध रूपों को दिखाने के लिए यशपाल ने उन्हें सामाजिक परिवेश के भीतर ज्यों का त्यों चित्रित किया है। "भारतीय समाज में नारी की दयनीय स्थिति, पुरुष द्वारा उसका शोषण और उसके प्रति किए गए अत्याचारों को इन कहानियों में स्थान देने का मुख्य उद्देश्य इन विकृतियों का अन्त करने की प्रेरणा देना है।"[1]

नारी विषयक कहानियों में प्रेम का सार, पहाड़ की स्मृति, तीसरी चिता, प्रायश्चित, पराई, दूसरी नाक, ज़बरदस्ती, अपनी चीज़, छलिया नारी, ज़िम्मेदारी, मंगला, पांव तले की डाल, एक सिगरेट, मार का मोल, वैष्णवी, रिज़्क, पुनिया की होली, चूक गई, गंडेरी, हलाल का टुकड़ा, जहां हसद नहीं, पराया सुख, जादू के चावल, निर्वासिता आदि बहुत-सी कहानियां हैं।

नारी का शोषण:

"प्रेम का सार" और "पहाड़ की स्मृति" दोनों ही कहानियों में पुरुष वर्ग के स्वार्थ को ही दिखाया गया है। यह वर्ग अपनी वासना की तृप्ति के लिए नारी को शिकार बनाता है और उसे एक दयनीय जीवन जीने के लिए विवश कर देता है।

1- गुप्त, सरोज : यशपाल: व्यक्तित्व और कृतित्व, भूमिका

नारी की पराधीनता :

'तीसरी चिता' में नारी पर पुरुष की स्वामित्व भावना और नारी की पराधीनता दिखाई गई है। संकीर्ण मानसिकता की वजह से जयदेव माला की एकनिष्ठता पर शक करता है। वह उसकी बात-बात पर उपेक्षा करता है किन्तु एक भीषण अग्निकाण्ड में माला जयदेव की रक्षा में अपने प्राण देकर यह सिद्ध कर देती है कि वह केवल जयदेव से ही प्रेम करती थी। 'पराई' की रक्खी पर विवाह पूर्व पूरन जान छिड़कता था किन्तु शादी के बाद वह उसके अधीन हो जाती है इसलिए पूरण के मनोभाव बदल जाते हैं।

नारी की विवशता :

'दूसरी नाक' नारी की विवशता और पुरुष के अत्याचारों की कहानी है। जबूबार अपनी सुन्दर पत्नी की नाक सिर्फ इसलिए काट देता है कि उसकी पत्नी के सौन्दर्य को लोग ललचाई निगाहों से देखते हैं जो उसे पसंद नहीं। 'जहां हसद नहीं' की सबादत पति के होते हुए भी दूसरे पुरुष के प्रति आकृष्ट है किन्तु पति के पराधीन होने के कारण वह प्रेमी से स्वतंत्रता से मिल नहीं सकती इसलिए वह पति के हाथों स्वेच्छा से मर जाती है। 'जबरदस्ती' की सुनन्दा घर में इस तरह कैद है जैसे पिंजरे में पक्षी बन्द हो, इस घुटनभरी कैद से मुक्त होने के लिए वह छटपटाती है किन्तु पति का अहंकार उसे पराधीन, कैद में देखकर ही तुष्ट होता है। इसी तरह की कैद 'अपनी चीज़' की बालो के लिए भी है। मेजर डाक्टर चौहान अपनी पत्नी बालो और कर्नल कौशिक के प्रेम-सम्बन्ध को सहन नहीं कर पाता। प्रतिहिंसा में ऐसा पागल हो जाता है कि कौशिक बीमार पड़ता है तो वह उसे ज़हर का इंजेक्शन देकर

मार देता है । कौशिव की मृत्यु का आघात झेलने में आलो असमर्थ है इसलिए वह मरना चाहती है किन्तु डाक्टर चौहान उसे मरने नहीं देना चाहता, दवाएं देकर जीवित रखना चाहता है क्योंकि वह उसकी अपनी सम्पत्ति 'अपनी चीज़' है । उसे खोने का मतलब है पराजय को स्वीकार कर लेना । 'छलिया नारी' की ननदों शादी के बाद यह महसूस करती हैं कि वह बुरी तरह छली गई हैं । विवाह के पहले ही दिन उसके सारे कोमल स्वप्न पति की निर्दयता और कटु व्यवहार के कारण छिन्न-भिन्न हो गए । वह पति द्वारा दी जाने वाली यातनाओं से तंग आकर उनसे बचने के लिए घर छोड़कर भाग जाती है और अन्ततः आत्महत्या कर लेती है ।

पति-पत्नी सम्बन्धों में तीसरे व्यक्ति का प्रवेश :

'होली नहीं खेलता' की ज्योत्सना पढ़ी-लिखी और समझदार है । ज्योत्सना और कपूर के दाम्पत्य जीवन में बंजल प्रवेश करता है और ज्योत्सना से सम्बन्ध बढ़ाना शुरू करता है । बंजल की समझदारी पर भरोसा कर ज्योत्सना भी इसमें कोई बुराई नहीं देखती । किन्तु अन्य पुरुषों की तरह ही बंजल भी स्त्री को जमीन-जायदाद की तरह पुरुष की सम्पत्ति मानता है यह जानकर ज्योत्सना को आघात् लगता है । 'पराया-सुख' की मास्टरनी उर्मिला पढ़ी-लिखी होने पर भी पुरुष के शोषण का शिकार हो जाती है । यहां शोषण करने वाला पति नहीं अन्य व्यक्ति व्यवसायी सेठी है । सेठी अहसान करते-करते स्वयं उर्मिला के जीवन पर छाता चला गया, उर्मिला ही नहीं उसका पति भी सेठी के आधीन है । उनका सुख-दुख कुछ भी अपना नहीं रह गया, उनकी अपनी इच्छा या अनिच्छा अब महत्वहीन हो गयी हैं ।

सेठि ने यद्यपि उर्मिला को कभी हाथ तक नहीं लगाया किन्तु फिर भी वह उर्मिला और उसके पति के सम्बन्धों के बीच आकर खड़ा हो गया है ।

विधवा समस्या :

'वैष्णवी' की विधवा द्रौपदी भी समाज के शोषण की शिकार है । वह परम्परागत सामाजिक और नैतिक मान्यताओं की वजह से अपनी यौवन-सुलभ भावनाओं स्वप्न इच्छाओं से वंचित रह जाती है और विधवा होने के कारण उपेक्षा और तिरस्कार के घुटन भरे वातावरण में रहती है । किन्तु वह इससे मुक्ति का एक उपाय खोज लेती है और वैष्णवी बनकर घर से भाग जाती है । वैष्णवी का चोगा पहनकर अब वह कुछ भी करने के लिए स्वतंत्र है । इस तरह इस चोगे के सहारे वह अपनी वासनाएं भी पूर्ण कर लेती है और उसे वैष्णवी होने का सम्मान भी मिल जाता है ।

यशपाल की नारी का एक अन्य रूप :

इन मध्यवर्गीय कुलनारियों के अतिरिक्त यशपाल के यहां वह नारी भी है जो समस्याओं से जूझने के लिए किसी भी साधन को अपना लेती है । उनमें 'रिज़क' की वह स्त्री भी है जिसे पति की बीमारी में घर चलाने और पेट पालने के लिए शरीर का सौदा करना पड़ता है या 'पुनिया की होली' की पुनिया की तरह उसे चोरी करनी पड़ती है । चार दिन से अन्न का दाना न मिलने के कारण जो नारी वेश्यावृत्ति करती है वही पेट भरा रहने पर वेश्यावृत्ति में लगे होने पर भी 'हलाल का टुकड़ा' ही खाती है राजनीतिज्ञ के हज़ारों रूपयों की थैली ज्यों की त्यों लौटा देती है । क्योंकि वह उसके हक-हलाल का नहीं है । 'उपदेश' की नायिका भी हालांकि शरीर का व्यापार करती है लेकिन

उसका भी एक-चरित्र है । भूपेन्द्र नामक युवक बिना कुछ किए ही उसे अपमानित करने के लिए उसकी तरफ नोट बढ़ाता है तब लड़की ने उसकी बांह में पड़ी अपनी बांह खींच ली । "उसकी गर्दन तन गयी और वह फुंकार उठी, " चुप रहो जी --- मैं क्या घृणित काम करती हूं ? --- जो कुछ करती हूं तुम्हारे जैसों के साथ करती हूं । बट आई डू इट इन नीड एण्ड यू डू इट फार फ़न " भूपेन्द्र हाथ में नोट लिए इस लड़की का उपदेश सुनकर अवाक् रह गया । 103-4

वैश्या भी नारी है इसलिए वह दोहरे शोषण का शिकार होती है । "गण्डेरी" की प्रमुख पात्र नाच-गाने का पेशा करने वाली बाई जी हैं । सारी रात मेहनत से नाचने-गाने के बावजूद पुरुष समाज को प्रभावित कर पाने में उम्र ढलने के कारण असफल रहती है इसलिए रुपयों के बदले उन्हें उपहास और उपेक्षा मिलती है । लेकिन यशपाल के साहस को दाद देनी होगी कि उन्होंने कुछ एक कहानियों में वैश्या को प्रतिव्रता नारी से भी ऊंचे आसन पर बैठा दिया है । "पतिव्रता" और "जादू के चावल" कहानियों में, समाज की प्रचलित मान्यताओं को वे चुनौती देते हैं । "पतिव्रता" की नायिका सुमति होनहार और महत्वाकांक्षी है, समाज में आदर पाने की इच्छा से वह एक समृद्ध वृद्ध सेठ जी की तीसरी पत्नी बन जाती है । सेठ जी के मुख से पायरिया की असह्य गन्ध आने के बावजूद पत्नी होने की वजह से वह उसे सहन करती रहती है जबकि शरीर का सौदा करने वाली निहार सेठजी के मुख से आने वाली बदबू के कारण उनका और उनके पैसे का तिरस्कार कर चली जाती है । इसी तरह "जादू के चावल" की मिसिया ग्रिमि है । वह स्वतंत्र है, अपने पैरों पर खड़ी है इसलिए वह जब चाहे किसी से प्रेम कर सकती है और उसके आखें फेरने से पूर्व उसे छोड़ भी सकती है जबकि कुल नारी ऐसा नहीं कर सकती क्योंकि वह पराधीन है --- "मिस जिमि को तैश आ गया

बोली - "हम किसी को क्यों बहकाएंगी । हम क्या टुकड़े की गुलाम हैं ? तुम्हारी तरह मर्द को खसम बना उसे फंसाये रखने के लिए फन्दे डालती फिरती हैं ? हमें खुदा ने हाथ-पैर दिये हैं, हमारी जिन्दगी कौन बना-बिगाड़ सकता है ?"[1]

इस तरह हम देखते हैं कि यशपाल की नारी विविध प्रकार की है कहीं वह अति भावुक है, कहीं पेट पालने के लिए शरीर का सौदा करती है और कहीं पुरुष के शोषण का तीखा प्रत्युत्तर भी देती है । कुछ नारियों का आत्मसम्मान और अहम् दमन को स्वीकार नहीं करता, वह अत्याचार और शोषण को एक सीमा तक ही सहन करती है फिर "वैष्णवी" की द्रौपदी घर से भाग जाती है, "प्रेम का सार" की रफिया छुरा लेकर फज्जा को ढूंढने निकलती है कि यदि उसके साथ चलने को तैयार न हुआ तो उसे कत्ल कर देगी, "छलिया नारी" की नन्दो पति के अत्याचार से मुक्त होने के लिए घर से भाग गई चाहे उसे अन्त में आत्महत्या ही करनी पड़ी, "एक सिगरेट" की दमती ने भी आत्माभिमान के कारण निर्वाह के लिए पति से मिलने वाला धन लेना अस्वीकार कर दिया । इस प्रकार की नायिकाएं साहसी और आत्मविश्वासी हैं, ये स्त्रियां समाज के मान्यताओं और परिस्थितियों के साथ ही परिवर्तित हो रही हैं । इनमें आत्म-निष्ठा है, आत्मविश्वास है, वे मुखर और स्पष्टवादिनी हैं । इसका कारण भी यह है कि आत्म सम्मान और अपने व्यक्तित्व से शून्य नारी की यशपाल कल्पना भी नहीं कर सकते । उनके विचार में मेरे लिए यह विश्वास कर पाना कठिन है कि आज का समाज अतीत की सभी मान्यताओं में भावात्मक और रागात्मक सौन्दर्य की अनुभूति पा सकता है ।"[2] वह सती हो जाने जैसी स्थिति को भी सौन्दर्य नहीं विभीषिका मानते हैं ।

1- तर्क का तूफान (संग्रह) - पृष्ठ-108

2- ओ मेरवी (संग्रह) - भूमिका

इसके अतिरिक्त नारी - पुरुष की समता के इस युग में वह नारी को भी नये रूप में देखना चाहते हैं " आज यदि कोई शकुन्तला किसी दुष्यन्त द्वारा भुला दी जाने पर फिर उसी पति के चरणों का आश्रय चाहती है तो वह नारी मुझे मानवी आत्म-सम्मान से शून्य अत्यन्त हेय नारी ही जान पड़ेगी ।"[1] (7)

---00000---

1- ओ भैरवी (संग्रह) - भूमिका

पंचम अध्याय

उपसंहार

पंचम अध्याय

उपसंहार

यशपाल की कहानियों का मध्यवर्ग की समस्याओं के संदर्भ में अध्ययन करने के पश्चात् हम पाते हैं कि उनके रचना-काल में समाज में मध्यवर्ग धीरे-धीरे उभर कर सामने आया और साहित्य में भी उसे स्थान मिलना प्रारंभ हुआ । दरअसल प्रेमचन्द के युग का यथार्थ जिस तरह प्रेमचन्द या उनके अन्य समकालीन लेखकों के यहाँ चित्रित हुआ उसी तरह प्रेमचन्दोत्तर काल का सामाजिक यथार्थ यशपाल के कथा-साहित्य का प्रमुख विषय बना । प्रेमचन्द का कहानी-साहित्य ग्रामीण यथार्थ को अधिक लेता है । शहरी मध्यवर्गीय जीवन उनके उपन्यासों में ग्रामीण कथा के साथ-साथ आता है लेकिन कहानियाँ अधिकतर ग्रामीण निम्नवर्गीय व्यक्ति को विषय के रूप में लेती है । यशपाल स्वयं शहरी मध्यवर्गीय लेखक थे इसलिए उनके सारे कथा-साहित्य में शहरी मध्यवर्ग ही विषय बनकर आया है । स्वतंत्रता पूर्व भारत में मध्यमवर्ग के व्यक्ति की जो कुछ समस्याएं थीं या हो सकती थीं उनका यशपाल की कहानियों में सफलतापूर्वक चित्रण किया गया है । किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में एक परिवर्तन आना शुरू हुआ और उससे राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक सभी क्षेत्र प्रभावित हुए । इन परिवर्तनों का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ना स्वाभाविक ही था ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् सारे विश्व के साहित्य में आशंका, भय, जीवन के प्रति अनास्था, अनिश्चितता मूल्यों का विघटन, और पतनशील प्रवृत्तियों का उदय हुआ था क्योंकि "दो महायुद्धों से थकी मानवजाति के जनसाधारण हिटलर की हार के बाद शान्ति, आराम

और सुख-सुविधाओं के सपने ले रहे थे, पर व्यवहार में वे देख रहे थे कि आज मानव जाति ने अपने सम्पूर्ण विनाश की तैयारी पूरी कर ली है।"[1] भारत में भी आज़ादी के बाद इसी प्रकार की प्रवृत्तियां साहित्य में दिखाई पड़ने लगीं। भारत को जो आज़ादी 1947 में मिली उससे समाज के कुछ वर्गों को बड़ा फ़ायदा हुआ जैसे पूंजीपति को अपने वर्ग के हित और सामन्ती तत्वों को अपने हित-स्वार्थ पूरे करने का मौका लगा। किन्तु मध्यम वर्ग, जिसे आज़ादी से बहुत आशाएं थीं बेहद निराश हुआ। आज़ादी के बाद हमारे समाज में जो स्थितियां आईं वह थीं उपयुक्त साधनों का अभाव, जीवन स्तर में आ रही गिरावट, बेकारी, जनसंख्या वृद्धि, भूख, गन्दगी, बीमारी और सामाजिक अव्यवस्था-- जिनसे देश का सामान्य जन पीड़ित रहा। किन्तु सबसे बुरी स्थिति रही मध्यवर्ग की। "मध्यवर्ग ने ही स्वतंत्रता से सबसे ज़्यादा अपेक्षाएं की थीं। इसलिए सबसे अधिक निराशा और विकलता भी इसी वर्ग को हुई। इस वर्ग की ज़िन्दगी सबसे कष्टमय है, वह आंतरिक और बाह्य संघर्षों से आक्रान्त है।"[2] स्वतंत्रता के पहले वाला मध्यवर्ग यूरोपीय प्रभाव के कारण उच्चवर्ग का अनुसरण करना चाहता था, वह बाहरी टीम-टाम और प्रदर्शन पर मरता था किन्तु स्वतंत्रता के उपरान्त तो वह किसी प्रकार जीवन-रक्षा मात्र करना चाहता है क्योंकि उसके पास कोई भी सुदृढ़ आर्थिक आधार नहीं है। स्वतंत्रता के बाद देश में शिक्षित बेरोज़गारी बहुत फैली है और सामाजिक अव्यवस्था तो है ही। समाज में युवक को उसकी योग्यता के अनुरूप फल नहीं मिलता, उससे कम योग्यता वाला व्यक्ति अच्छी नौकरी पा लेता है क्योंकि उसका

1- विद्यालंकार : चन्द्रगुप्त : सारिका, मार्च 1965

2- सं० अवस्थी, देवीशंकर : नई कहानी : संदर्भ और प्रकृति, पृष्ठ-60
लेख : नई कहानी - हरिशंकर परसाई।

कोई परिचित उच्च पदाधिकारी होती है । मध्यवर्ग का यह व्यक्ति शिक्षा या नौकरी के सिलसिले में माता-पिता, घर-परिवार और इस तरह मोह-ममता का घेरा तोड़कर बाहर आया था पर तब भी उसके साथ उसकी पत्नी थी, बच्चे थे यानि उसका एक छोटा-सा परिवार उसके साथ था किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् यह लघु परिवार भी टूटने लगे । कारण यह था कि समय के साथ नारी ने स्वतंत्र रूप से बाहर आकर काम करना शुरू कर दिया था और साथ ही उसने अपने अधिकारों का भी प्रयोग करना शुरू कर दिया था । इस कारण पति-पत्नी के सम्बन्धों में भी तनाव आना शुरू हो गया । किन्तु फिर भी इस प्रक्रिया में नारी की स्थिति बदल गई । वह स्वावलम्बी ही नहीं हुई माता-पिता, भाई-बहन और कहीं-कहीं पति की भी पालक बन गई और स्वाभाविक ही उसके व्यवहार में भी परिवर्तन आना शुरू हो गया । परिणामस्वरूप मध्यवर्गीय जीवन में बिखराव, सम्बन्ध विच्छेद, अवसाद और अकेलेपन की स्थितियां सामने आने लगीं "सारे संबंधों से टूटा हुआ व्यक्ति अधिक से अधिक अकेला, अजनबी होता चला गया और रह गया अविश्वास, घृणा और आपस में अपरिचय, अनिश्चय ।"[1] समाज में चारों ओर असंयम, अनैतिकता, दायित्वहीनता, भ्रष्टाचार और बेईमानी का नंगा नाच होने लगा । मोहन राकेश लिखते हैं कि देश को गर्त में ले जाने वाले इस पतन से हमारे मूल्यों की ठेस नहीं लगी थी बल्कि हमें जीवन की डोर हाथों से फिसलती सी लगी थी । इसलिए नहीं कि पुराने मूल्य लुप्त हो चुके थे वरन् इसलिए कि कई विपरीत मूल्य जन्म ले रहे थे ।"[2]

नई कहानी और यशपाल :

स्वतंत्रता के पश्चात् जो घटनाक्रम हमारे सामने आता है उसमें

1- यादव, राजेन्द्र : एक दुनिया समानान्तर : पृष्ठ-31

2- राकेश, मोहन : साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि पृष्ठ-149

मध्यवर्गीय व्यक्ति को मोहभंग की स्थिति का सामना करना पड़ा । समाज के मध्यवर्ग से आने वाले हमारे साहित्यकारों ने भी स्वाभाविक रूप से अपने वर्ग के व्यक्ति की ही कहानियां ज़्यादा लिखीं । "इस वर्ग की जिन्दगी जितने रूपों में, जितनी सच्चाई से चित्रित हुई है उतनी किसी अन्य वर्ग की नहीं और स्पष्ट है कि उसमें दर्द और पीड़ा, पतन और विफलता होगी ही ।"[1] यही वजह है कि इस समय की कहानी की मूल समस्या विघटित जीवन-मूल्य ही रहे । "विघटित यौन और जीवन-मूल्यों की पकड़ और उनका प्रस्तुतीकरण नारी के माध्यम से अधिक सुगमता और सशक्तता से किया जा सकता है ।"[2] इसलिए इस समय की कहानी में नारी को भी विशिष्ट स्थान मिला । इस तरह व्यक्ति का अजनबी-अकेलापन, अपरिचय, अनिश्चय, आपसी घृणा, टूटन और उसका संत्रास ही "नयी कहानी" का विषय बना ।

दरअसल अपने काल की सामाजिक राजनीतिक समस्याओं और उनके प्रभावों को सामान्य जनता पर बीतते देखकर साहित्यकार ने उसे ही अपने साहित्य का प्रमुख विषय बना लिया । यही वजह है कि "चिन्तन, कला और साहित्य में पिछले (इन) वर्षों में जो परिवर्तन पहले कभी शायद एक सदी में भी न आए हों ।"[3]

"नई कहानी" के समय की परिस्थितियों और उसके विषय की चर्चा करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि एक तो यशपाल "नयी कहानी" के दौर में भी रचना कार्य कर रहे थे और दूसरी वजह यह है कि यशपाल के यहां जिस मध्यमवर्ग की हम बात कर रहे हैं वह मध्यमवर्ग "नयी कहानी"

1- सं० अवस्थी, देवीशंकर : नई कहानी : संदर्भ और प्रकृति - पृ०-60
लेख : नई कहानी : हरिशंकर परसाई

2- धींगड़ा, सुरेश : हिन्दी कहानी : दो दशक, पृष्ठ-69-70

3- विद्यालंकार, चन्द्रगुप्त : सारिका-मार्च 1965

लेखन का महत्वपूर्ण विषय रहा । इसे यदि हम इस तरह कहें कि 'नयी कहानी' के दौर की प्राय: सभी कहानियां मध्यवर्ग को ही अपना वक्तव्य बनाकर चलीं तो भी सही होगा । लेकिन जैसा कि हमने देखा स्वतंत्रता-पूर्व के मध्यमवर्ग और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् मध्यवर्ग में, उसके व्यक्ति की समस्याओं में एक विराट परिवर्तन दृष्टिगत होता है, तो देखना यह है कि यशपाल 'नयी कहानी' के इस आन्दोलन को किस दृष्टि से देखते हैं और उनका कहानी-साहित्य इस आन्दोलन से कहां जुड़ता है और कहां नहीं जुड़ पाता ।

कमलेश्वर ने एक स्थान पर लिखा है कि 'जब-जब परिस्थितियां बदलती हैं, तब-तब व्यक्ति और जीवन के सारे सम्बन्धों का नया संतुलन आवश्यक हो जाता है, बदले हुए सम्बन्ध स्थापित मूल्यों के लिए संकट पैदा कर देते हैं, तब यह ज़रूरी हो जाता है कि इस बदलाव के दबाव और उसकी पूरक शक्तियों से उत्पन्न नए मूल्यों को पहचाना जाए । पुरानी पीढ़ी के लिए हमेशा यह दिक्कत पेश आती है क्योंकि अपने सृजन-काल में वे अपनी सहमति कुछ स्थापनाओं को दे चुके हैं और तब उनके लिए अपनी ही निर्मितियों या स्थापनाओं को तोड़कर निकल पाना मुश्किल हो जाता है ।'[1] यशपाल के साथ भी लगभग ऐसी ही स्थिति है । वह अन्त तक जनवादी विचारों की ही कमोबेश अभिव्यक्ति करते रहे इसलिए बदल रहे वर्गीय सम्बन्धों की पहचान कर पाने में असफल रहे और साथ ही उसे अपने साहित्य में भी ढाल नहीं पाए । उन्होंने राजेन्द्र यादव की 'नई कहानियां' पत्रिका (अप्रैल 1965) में एक इन्टरव्यू दिया था जिसमें उनका कुछ-कुछ 'नई कहानी' विरोधी स्वर भी सुनाई देता है । 'नयी कहानी' की कहानियों में उन्हें एक प्रकार का कन्फ्यूज़न नज़र आता है

1- कमलेश्वर : नई कहानी की भूमिका : पृष्ठ-14

वह स्वयं स्पष्ट नहीं किन्तु उन्हें लगता है कि उसमें कहीं गतिरोध है और कहीं गतिरोध ।"[1] "नयी कहानी" में उन्हें "नयी कविता" वाली आत्मरति मालूम पड़ती है वह कहते हैं "कई जगह लगता है कि लेखक कुछ कहना चाहता है, कुछ कहने के लिए छटपटा रहा है, पर क्या कहना चाहता है यह स्पष्ट नहीं हो पाता । लगता है कि कुछ लोग स्वयं अपने में स्पष्ट नहीं हैं ।"[2] इसके अतिरिक्त "नयी कहानी" में जो विषय उठाए गए हैं उनसे भी वह संतुष्ट नहीं "यह सब जो आज "नए स्वर" के अन्तर्गत छपता है और जिसे "नयी कहानी" के साथ जोड़ा जाता है, इसे आप कहां तक सामाजिक कहेंगे ? क्या यह भी व्यक्ति परकता और आत्मरति की रुग्ण मानसिकता नहीं है ?"[3] लेकिन "नयी कहानी" के अन्तर्गत किन्हें माना जाए, इस प्रश्न पर वह कहते हैं कि "जो कहानियां (जिन्दगी के) इन कुशल-प्वाइन्ट्स को छू पाती हैं सही मायने में उन्हें ही "नयी" कहा जा सकता है ।... उसमें समस्या सामाजिक और नितान्त सामयिक ली जाती है, समस्या और उसमें दिया गया आचरण आज की नयी परिस्थितियों की उपज है ।"[4] दरअसल यशपाल ने साहित्य में समाज का यथार्थ प्रस्तुत करने के लिए जिन जनवादी विचारों का सहारा लिया था वह केवल उन्हीं तक सीमित रह गए । स्वतंत्रता के पश्चात् मध्यवर्गीय समाज में व्याप्त टूटन, कुण्ठा, अजनबीपन और संत्रास आदि स्थितियों का चित्रण उनकी कुछ एक कहानियों में मोटे तौर पर आ गया है लेकिन उसके आगे कुछ नहीं । हां । एक स्तर पर

1- नई कहानियां (पत्रिका) : अप्रैल 1965, पृष्ठ-79-80

2- --वही --- ,, 1965, पृष्ठ-81

3- --वही --- ,, 1965, पृष्ठ-80

4- --वही --- ,, 1965, पृष्ठ-81

वह "नयी कहानी" से अनजाने ही जुड़ जाते हैं और वह है -- व्यंग्य का प्रयोग । यशपाल ने अपने साहित्य में सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करने के लिए जिस सशक्त हथियार व्यंग्य को अपनाया था, वह "नयी-कहानी" के लेखकों का भी प्रिय हथियार रहा । हरिशंकर परसाई लिखते हैं "तीखा सामाजिक व्यंग्य, जो जीवन में व्याप्त असामंजस्य, असंतुलन और वैषम्य के बखिए उधेड़ता है, आज की कहानी की उपलब्धि है ।"[1]

दरअसल यशपाल एक प्रतिबद्ध कलाकार है और साहित्य रचना का उनका एक अलग ही दृष्टिकोण है । वह मानते हैं कि "किसी भी रचना में अंकित परिस्थितियां लेखक की अपनी मानसिक स्थिति का ही परिणाम होती हैं । लेखक जैसे चाहता है उन्हें ढाल लेता है ।"[2] मार्क्सवाद से प्रतिबद्ध होने के कारण वह वस्तु और विचारों को साहित्य के माध्यम से सामने लाना चाहते हैं ।

कला, कला के लिए :

"कला कला के लिए" सिद्धान्त से यशपाल का विरोध है । उनकी दृष्टि में जो कलाकार अनुभव और विचारों से रहित होता है वही अपनी कृति को निष्प्रयोजनता से बचाने के लिए कला और शिल्प का सहारा लेता है । कला का मूल प्रेरणास्रोत उनके लिए समाज और जीवन है । इसलिए वह मानते हैं कि कला का सामाजिक प्रयोजन होना चाहिए, जीवनगत लक्ष्य होना चाहिए । वह कला को सौद्देश्य मानते हैं । अपने "मैं केवल प्रयोजन से ही लिखता हूं" लेख में ।"[3] "यशपाल कला को कला के

1- परसाई, हरिशंकर : लेख "नयी कहानी" (नई कहानी: संदर्भ और प्रकृति - सं० देवीशंकर अवस्थी, पृष्ठ-57)

2- नई कहानियां (पत्रिका) -अप्रैल 1965, पृष्ठ-76-77 (इन्टरव्यू कहानी और आज की जिन्दगी)

3- साप्ताहिक हिन्दुस्तान : 4 दिसम्बर 1966, पृष्ठ-13

निर्लिप्त क्षेत्र में न रखकर उसे भावों या विचारों का वाहक मानते हैं।[1] यशपाल मानते हैं कि कला का उद्देश्य जीवन का विकास करना और उस विकास के लिए प्रेरणा देना है। "यदि जीवन संघर्ष है और कला जीवन की भावना की अभिव्यक्ति है तो कला संघर्ष की द्योतक हुए बिना नहीं रह सकती। केवल निरर्थक कला ही संघर्ष द्वारा विकास की भावना से शून्य हो सकती है।"[2] यशपाल का मानना है कि आदर्श साहित्यकार वह होता है जो समाज की पीड़ा और सुख को अनुभव करता है और अपनी कला द्वारा समाज का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करता है। इसलिए यशपाल अपने साहित्य में उन रूढ़ नैतिक मूल्यों का विरोध करते हैं जिनसे समाज के निर्माण और उसके विकास में बाधा पहुंचती है।

प्रेमचन्द की परंपरा और यशपाल :

यशपाल को प्रेमचन्द की परंपरा आगे बढ़ाने वालों में प्रमुख लेखक माना जाता है। किन्तु अपने ऊपर प्रेमचन्द के प्रभाव की सम्भावना पर टिप्पणी करते हुए यशपाल ने लिखा है, "मैंने सचेत रूप में कभी प्रेमचन्द की परम्परा निबाहने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लिया। प्रेमचन्द की सप्रयोजन लिखने की प्रवृत्ति और कथा-कौशल का मेरे मन में बहुत गहरा आदर है।... हो सकता है उनकी सशक्त शैली ने अचेतन रूप से मुझे प्रभावित किया हो। उनके और मेरे आदर्शों में भेद स्पष्ट है। मेरे विचार में वह पाठक की सहृदयता को छूना चाहते हैं और मैं न्याय-बुद्धि को।"[3]

1- मित्र, पारसनाथ : मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल, पृष्ठ-263

2- यशपाल : बात - बात में बात, पृष्ठ-29

3- मधुरेश : यशपाल के पत्र, पृष्ठ-48

दरअसल प्रेमचन्द अपने लेखन में आदर्शवाद को तथा हृदयपरिवर्तन को छोड़कर जहां समतामूलक व्यवस्था के निर्माण पर बल देते हैं उसी स्थल से यशपाल ने अपनी रचना-यात्रा शुरू की ।"[1] यानि प्रेमचन्द जहां कथा-रचना करते हुए अन्त में पहुंचे, यशपाल ने रचना करना ही वहां से शुरू किया । इसका कारण यह है कि देश के राजनीतिक आन्दोलनों और साम्राज्यवाद के विरोध में यशपाल प्रेमचन्द के मुकाबले अधिक सक्रिय रहे थे । ऊपरी तौर पर यह सब देखने से लगता है कि यशपाल ने प्रेमचन्द के प्रभाव से बचकर चलने की कोशिश अवश्य की थी किन्तु फिर भी वह कुछ स्थलों पर प्रेमचन्द के प्रभाव से जुड़ते जरूर हैं । मधुरेश ने ही एक अन्य स्थान पर लिखा है कि "प्रेमचन्द ने कहानी के क्षेत्र में स्वयं एक बहुत लम्बा रास्ता तय किया था । विचारों के विकास की दृष्टि से उनकी स्थिति यशपाल से पर्याप्त भिन्न थी । यशपाल को वैचारिक विकास की इतनी मंज़िलों से नहीं गुज़रना पड़ा, इसलिए वैचारिक स्फूरपता उनमें अपेक्षाकृत अधिक है ।"[2]

दरअसल यशपाल ने प्रेमचन्द की परम्परा के जीवित अंशों को तो संरक्षण दिया ही उन्हें एक नई दिशा भी प्रदान की लेकिन साथ ही उनकी सीमाओं को भी पहचाना । जहां तक समानता देखने का प्रश्न है वहां यह दोनों ही सामान्य जन से जुड़कर चले हैं । फ़र्क सिर्फ यह है कि प्रेमचन्द में यह व्यक्ति ग्रामीण है जबकि यशपाल में नगर निवासी । इसी जन को उसके अच्छे-बुरे सभी पक्षों में यशपाल ने चित्रित किया । एक अन्य चीज़ जो उन्हें प्रेमचन्द और प्रगतिशीलता की परम्परा से जोड़ती है वह साहित्य की सोद्देश्यता है । यशपाल प्रारंभ से सोद्देश्य और उपयोगी

1- मधुरेश : क्रान्तिकारी यशपाल : एक समर्पित व्यक्तित्व , पृष्ठ-216 (लेख - प्रेमचन्द की परम्परा और यशपाल)

2- मधुरेश : सिलसिला, पृष्ठ- 164

साहित्य को ही सही मानते हैं । उनके साहित्य का उद्देश्य स्वान्त: सुखाय न होकर परहिताय है । यशपाल मानते हैं कि साहित्य में सामाजिक यथार्थ की ही अभिव्यक्ति होती है और इसके बिना किसी भी रचना को सार्थक नहीं माना जा सकता । यशपाल ने सामाजिक यथार्थ चित्रण की यह प्रेरणा प्रेमचन्द साहित्य से तो ली ही होगी, उनकी अपनी मार्क्सवादी विचारधारा ने भी इसके विकास में सहयोग दिया । यशपाल के कथा-साहित्य में उच्च, मध्य और निम्न तीनों वर्गों के स्त्री-पुरुष पात्र बनकर आए हैं । यशपाल इन जीवन-सन्दर्भों से परिचित थे इसी लिए इनका सफलतापूर्वक चित्रण कर पाए हैं ।

विभिन्न आरोप:

हम पहले भी कह चुके हैं कि यशपाल एक प्रतिबद्ध कथाकार हैं और यह प्रतिबद्धता है मार्क्सवाद के प्रति । प्रकाश चन्द्र मिश्र मानते हैं कि "मार्क्सवादी विचारधारा सामाजिक जीवन से सम्बन्धित जिन क्रांतिकारी मूल्यों को प्रस्तुत करती है, उनमें से अधिकांश यशपाल के कथा-साहित्य में विद्यमान हैं ।"[1] इस विचारधारा के कारण यशपाल पर भौतिकवादी और मार्क्सवाद के प्रचारक होने का आरोप भी लगाया जाता है ।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी का कथन है, "यशपाल जी का अनुभव क्षेत्र बड़ा है और वे निर्बाध और विशाल जीवन परिस्थितियों का चित्रण करने की क्षमता रखते हैं । फिर पता नहीं क्यों वे इस शक्ति का परिपूर्ण उपयोग न करके एक सिद्धान्त-विशेष की छाया में ही साहित्य के पौधे को पनपाना चाहते हैं । क्या यह अधिक अच्छा न हो कि वे जीवन की खुली धूप, हवा, मिट्टी से उसे यथेष्ट खाद लेने दें । सिद्धान्त के गमले में

1- मिश्र , प्रकाशचन्द्र : यशपाल का कथा-साहित्य, पृष्ठ-203

रखें, चौबीस घण्टे की छाया में पले, ये पौधे कहां तक बढ़ पायेंगे ?"[1] किन्तु यशपाल प्रचार को विचार का ही पर्याय मानते हैं।"[2] वह इस सन्दर्भ में लिखते हैं, "मनुष्य के पूर्ण विकास और मुक्ति के लिए संघर्ष करना ही लेखक की सार्थकता है। जब लेखक अपनी कला के माध्यम से मनुष्य की मुक्ति के लिए पुरानी व्यवस्था और विचारों में अन्तर्विरोध दिखाता है और नए आदर्श सामने रखता है तो उस पर आदर्शहीनता और भौतिकवादी होने का आरोप लगाया जाता है। आज के लेखक की जड़ें वास्तविकता में हैं इसलिए वह भौतिकवादी तो हैं ही, परन्तु वह आदर्शहीन भी नहीं है। उसके आदर्श अधिक यथार्थ हैं। आज का लेखक जब अपनी कला द्वारा नए आदर्शों का समर्थन करता है तो उस पर प्रचारक होने का लांछन लगाया जाता है। लेखक सदा ही अपनी कला से किसी विचार या आदर्श के प्रति सहानुभूति या विरोध पैदा करता है। हमारा विश्वास है कि विचारहीन साहित्य की सृष्टि करने की अपेक्षा प्रचार का लांछन स्वीकार कर लेना ही बेहतर है।"[3] प्रेमचन्द ने भी एक स्थान पर कहा था "सभी लेखक कोई न कोई प्रोपेगेन्डा करते हैं - सामाजिक, नैतिक या बौद्धिक। अगर प्रोपेगेन्डा न हो तो संसार में साहित्य की जरूरत ही न रहे। जो प्रोपेगेन्डा नहीं कर सकता वह विचारशून्य है और उसे कलम हाथ में लेने का कोई अधिकार नहीं। मैं इस प्रोपेगेन्डा को गर्व से स्वीकार करता हूं।"[4] यह बात सही है किन्तु यदि हम यशपाल के सम्पूर्ण कथा-साहित्य को देखें तो पाते हैं कि जब और जहां उन्होंने अपनी मार्क्सवादी विचारधारा का सहारा लेकर सामाजिक यथार्थ का चित्रण किया है और समाज व्यवस्था को बदलने की बात की है वहां उनका साहित्य प्रभावशाली है लेकिन दिक्कत तब आती है जब

1- वाजपेयी; नन्ददुलारे: हिन्दी उपन्यास की विकास रेखा: उपलब्धियां और अभाव-लेख, आलोचना (13), पृष्ठ-59

2- यशपाल : धर्मयुद्ध (संग्रह), पृष्ठ-5

3- यशपाल : राह बीती, पृष्ठ-29 (चेकोस्लोवाकिया लेखक-कांग्रेस में

यशपाल मार्क्सवादी विचारधारा या दृष्टि को ही विषय बना लेते हैं। उनके उपन्यासों में तो प्रायः यही बात है, 'देशद्रोही' और 'पार्टी कामरेड' तो विशुद्ध राजनीतिक उपन्यास हैं जिनका उद्देश्य मात्र मार्क्सवादी दल को प्रतिष्ठित करना है। अन्य उपन्यासों में भी वह इस प्रकार का कोई अवसर नहीं चूकते जिसमें मार्क्सवादी विचारधारा की व्याख्या कर पाएं। यही बात कहानियों के साथ भी है 'आत्मदान', 'ज्ञानदान', 'वो दुनिया' आदि अनेक ऐसी कहानियां हैं जो मात्र मार्क्सवादी विचारधारा को ही स्पष्ट करने के लिए लिखी गई हैं।

इसके अतिरिक्त यशपाल साहित्य में एक अन्य कमज़ोरी दिखती है वह उनका 'काम' सम्बन्धी दृष्टिकोण है। यशपाल के साहित्य का एक बहुत बड़ा अंश सेक्स और यौन समस्याओं से ही सम्बद्ध है क्योंकि वह मार्क्स के अतिरिक्त फ्रायड से भी प्रभावित है।

डा० राम विलास शर्मा लिखते हैं, 'यशपाल के पात्र जन-जीवन के प्रतिनिधि नहीं। वे उस वर्ग के लोग हैं जिनके लिए सैक्स और आत्मपीड़ा की समस्याएं प्रधान हैं।'[1] साथ ही वह कहते हैं कि 'यशपाल के कथापात्रों में चरित्र की वह दृढ़ता नहीं जो पूंजीवादी व्यभिचार को चुनौती दे, जो सर्वहारा नैतिकता को एक आदर्श के रूप में जनता के सामने रखे।'[2]

प्रगतिशील आलोचक डा० देवराज उपाध्याय भी लिखते हैं, 'यशपाल में फ्रायड और मार्क्स मानों अपने शाश्वत विरोधों का परित्याग कर साथ-साथ गलबाहीं डाले घूम रहे हैं।'[3] यशपाल ने यह स्वयं स्वीकार

- अभिभाषण।

&- अमृतराय : कलम का सिपाही, पृष्ठ-492

1- शर्मा, रामविलास: प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं, पृष्ठ-119

2- ---वही--- ,, ,, पृष्ठ-122

3- उपाध्याय, देवराज : आलोचना, अक्तूबर 1952, पृष्ठ-147

उद्धृत(डा० लक्ष्मण दत्त गौतम: आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में प्रगति-चेतना)

किया है कि वह सैक्स और काम को जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष मानते हैं और समाज, मनुष्य और उसके जीवन को सही रूपों में समझने के लिए यह एक माध्यम है । यानि मध्यवर्ग का प्राय: प्रत्येक स्त्री-पुरुष इस प्रकार की समस्याओं का शिकार है इसलिए जब तक उनके जीवन का यह पक्ष न लिया जाएगा तब तक उनकी सही तस्वीर भी पेश नहीं की जा सकती ।

मार्क्सवादी विचारधारा वाले आलोचकों को यहीं पर आपत्ति है । वह कहते हैं कि मार्क्सवादी जीवन के केन्द्र में 'अर्थ' को देखता है जबकि फ्रायडवादी 'काम' को जीवन का केन्द्र मानते हैं । यह दोनों अलग-अलग लगभग विरोधी चिन्तन हैं लेकिन यशपाल ने किसी भी एक चिन्तन को नहीं लिया इसलिए एक अजीब खिचड़ी सी पकाई है ।

लक्ष्मण दत्त गौतम का ख़याल है कि 'नैतिक धारणाओं के संबंध में यशपाल अपने समय से कुछ आगे बढ़कर बोल गए हैं ।' यह सब उनके आक्रोश का परिणाम है । यहां वे विचार और विवेक का परस्पर सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाए हैं ।... वे नैतिकता के व्यापक अर्थ को, जिसमें मालिक-नौकर, अधिकारी-अधिकृत, अवर्ण-सवर्ण, साहूकार-कर्ज़दार, पूंजीपति-मज़दूर, पिता-पुत्र, पति-पत्नी तथा सास-बहू आते हैं, को लेकर इतना अधिक नहीं रमे जितना नैतिकता के एक संकुचित अर्थ को लेकर जमे हैं, जिनमें अधिकांशत: यौन-सम्बन्ध ही आता है ।'[1]

प्रकाशचन्द्र मिश्र लिखते हैं, 'नारी से उनकी सहानुभूति उन्हें इस सीमा तक बहा ले जाती है कि वे नारी को यौन-सम्बन्धी पूरी स्वच्छन्दता दे देते हैं । वह विवाह सम्बन्धों को अनावश्यक घोषित कर देते हैं और

1- गौतम , लक्ष्मण दत्त : आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में प्रगति चेतना , पृष्ठ-183 ।

मुक्त यौनाचरण की बात का समर्थन करने लगते हैं ।" उनके अनुसार "यशपाल के साहित्य में प्राय: मात्र पाठकों को आकर्षित करने के लिए उत्तेजनापूर्ण यौन चित्रण हुए हैं, कोई बुनियादी सवाल वहां नहीं उठाया गया ।" इसके कारण की तौज करते हुए वह बताते हैं कि "शायद मार्क्सवादी कहलाने के बावजूद यशपाल प्रेम, विवाह, सेक्स या काम सम्बन्धी मार्क्सवादी दृष्टिकोण से अपरिचित थे इसी कारण विकृत रूप में मार्क्सवाद को अपनी कृतियों में घटाने का उन्होंने प्रयास किया है ।[1]

दरअसल यशपाल-साहित्य में यह कमजोरी-नारी को पूर्ण स्वच्छन्दता देना और काम-सम्बन्धी खुला दृष्टिकोण इस कारण आ गए हैं कि यशपाल का बचपन आर्य-समाज के कठोर अनुशासन में बीता, जहां किसी चीज़ की अति हो जाती है जिसे हम एक्स्ट्रीम कहते हैं वहां उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप एक दूसरी अति या एक्स्ट्रीम आ जाती है । यशपाल ने आर्य समाज के कठोर अनुशासित ब्रह्मचर्य की प्रतिक्रिया स्वरूप ही सैक्स के विषय में ऐसा दृष्टिकोण अपना लिया होगा, ऐसा लगता है । यही बात नारी को हर विषय में पूर्ण स्वच्छन्दता देने वाली चीज़ में भी है । नारी को उन्होंने इस कदर शोषित-पीड़ित देखा (गृहस्थ, पतिव्रता नारी को) , कि उसे हर प्रकार की स्वच्छन्दता दिला देना ही उनका एक उद्देश्य हो गया । उनके "बात-बात में बात" के लेखों और विभिन्न कहानी-संग्रहों की भूमिकाओं में इसके प्रभाव मिलते हैं ।

यशपाल की कहानियां और निम्न वर्ग:

इन दो बड़ी कमजोरियों के अतिरिक्त यशपाल पर अन्य आरोप भी लगाए गए हैं । डा० राम विलास शर्मा ने यशपाल की चर्चा करते हुए

1- मिश्र, प्रकाश चन्द्र : यशपाल का कथा-साहित्य, पृष्ठ-208-209

अपनी पुस्तक 'कथा-विवेचना और गद्य-शिल्प' में कहा, 'महत्वपूर्ण बात यह है कि यशपाल जी अब भी मुख्यत: मध्यवर्ग के चितेरे हैं, वह किसानों और मज़दूरों को दूर से देखते हैं, निकट से, आत्मीयता से उनका चित्रण नहीं कर पाते।'[1] किन्तु इनका यह कथन हमें एक पक्षीय ही लगता है। यह अवश्य है कि यशपाल-साहित्य में मध्यवर्ग की समस्याओं को विषय के रूप में प्रधानता मिली है किन्तु फिर भी उनकी कहानियों में हमें मध्यवर्गीय पात्रों के साथ-साथ निम्न मध्य और निम्नवर्ग के पात्र और उनकी समस्याएं भी मिलती हैं। उदाहरण के लिए उनकी कुछ कहानियों की चर्चा करना यहां उचित होगा। उनकी एक कहानी है --- 'दुखी-दुखी'। कहानी मध्यवर्ग के पात्र की मानसिकता दिखाने के लिए लिखी गई है लेकिन फिर भी आर्थिक विपन्नता से ग्रस्त निचले वर्ग का दयनीय जीवन भी मार्मिक रूप में हमारे सामने आता है। जब व्यक्ति विपन्न हो और पेट उसका खाली हो तब उसके लिए नैतिकता का विचार कोई मायने नहीं रखता, भूख से व्याकुल हो वह भीख तक मांगने का खयाल करता है। ऐसी स्थिति में उसका सामना एक निम्नवर्गीय स्त्री से होता है जो उसी की तरह चार दिन से भूखी है। भूख से व्याकुल हो पैसा जुटाने के लिए वह अपना शरीर तक बेचने को तैयार है। दोनों की एक ही स्थिति नायक को यह सोचने के लिए बाध्य करती है कि नैतिकता और अनैतिकता का विचार पेट भरे होने तक ही मायने रखता है, 'वह जो अपने शरीर का सौदा करने बैठी थी, न जाने क्यों मुझे उसके प्रति ज़रा भी ग्लानि न हुई। कह नहीं सकता, मेरा विवेक मर गया था या स्वयं मेरे पेट की आग उसकी ओर से सफाई दे रही थी। उस समय एक रोटी के लिए मैं क्या कुछ करने को तैयार न हो जाता, यह आज नहीं कह सकता।'[2] इसी तरह

1- शर्मा, रामविलास : कथा-विवेचना और गद्य-शिल्प, पृष्ठ-77

2- पिंजरे की उड़ान (संग्रह), पृष्ठ-66

की एक कहानी है 'दुख' । इस कहानी में भी सुविधा-सम्पन्न मध्यवर्ग है और है समाज का बड़ा टुकड़ा यानि निम्न वर्ग । सुविधाभोगी तो अपने शगल के लिए कृत्रिम दुखों का निर्माण करता है किन्तु सर्वहारा या निम्नवर्ग ऐसा वर्ग है जिसके जीवन में सिवाय दुख के और कुछ नहीं । नायक दिलीप पकौड़े बेचने के लिए सर्दी की रात में सड़क पर बैठे बच्चे के साथ उसके घर तक जाकर जो देखता और सुनता है उससे कांप उठता है । वहां 'मुश्किल से आदमी के कद की ऊंचाई की कोठरी में, जैसी हमारे यहां ईंधन रखने की होती है, --- एक छोटी-सी चारपाई --- एक क्षीणकाया आधी उम्र की स्त्री एक मैली सी धोती में शरीर लपेटे बैठी थी ।'[1] मां-बेटे के वार्तालाप से उनकी अवस्था ज्ञात होती है, घर में रूपये का छुट्टा तक लौटाने लायक पैसे नहीं हैं, रोटी बस इतनी है कि बच्चा खा ले, मां केवल पानी पीकर रह जाती है, हालांकि दोनों जानते हैं कि इतने में एक का भी पेट मुश्किल से ही भर पाएगा । उनकी स्थिति का चित्रण इतना वास्तविक है कि लगता है सब हमारे सामने ही हो रहा है ।

'कर्मफल' कहानी में भी समाज के यही दोनों वर्ग चित्रित हैं । शोषण के ऊपर से इस वर्ग पर सुविधाभोगी कितना अत्याचार करते हैं कि बीमार बच्चे को ठण्ड और बारिश से बचाने के लिए अगर असहाय बिन्दी सेठानी के बरामदे में आ गई तो उसे गन्दगी के डर से मकान के बाहर निकाल दिया गया । पेड़ के नीचे ठण्ड और बारिश में उसका बच्चा मर गया लेकिन उसे रोने का भी अधिकार नहीं क्योंकि बिन्दी के रोने की आवाज़ से सेठानी की बच्ची की नींद में बाधा पड़ती है । ऐसी ही कहानी है--'दुख का अधिकार' । खरबूजा बेचने वाली की स्थिति इतनी

1- पिंजरे की उड़ान (संग्रह), पृष्ठ-140

खराब है कि जिस दिन खरबूजा न बेचे खाने को अनाज़ मिलना मुश्किल है । इसलिए जवान बेटे की मौत पर वह धनी औरतों की तरह कई दिन शोक नहीं मना सकती । विधवा बीमार बहू और अनाथ पोतों के लिए रोज़ के भोजन की व्यवस्था उसे रोज़ करनी है इसलिए वह विवश होकर बेटे की मौत के अगले ही दिन फिर सड़क पर खरबूजा बेचने आ जाती है । 'आदमी का बच्चा' कहानी की डौली सम्पन्न घराने में पैदा हुई इसलिए उसे नीच जात के बच्चों से खेलने की मनाही है । एक दिन मालिक का छोटा बच्चा मर जाता है, डौली आया से पूछती है कि वह कैसे मर गया ? आया बताती है भूख से । डौली बड़े भोलेपन से पूछती है कि क्या वह भी एक दिन भूख से मर जाएगी, आया अपना कुछ साल पहले मरा बच्चा याद कर कहती है कि 'भूख से कमीने आदमी के बच्चे मरते हैं ।' बच्ची और आया की बातचीत में लेखक ने समाज का कटु यथार्थ प्रस्तुत किया है । एक अन्य कहानी है --'अभिशप्त' । गरीबी और भूख छोटे से बच्चे तक से क्या करवा सकती है यह यहां दिखाई पड़ता है । एक गरीब माँ अपने छोटे से बच्चे को दूध की जगह आटा घोलकर पिलाती है, भूख से व्याकुल उसका बड़ा बच्चा यह सहन नहीं कर पाता कि छोटा भाई उसका हिस्सा बांट ले और वह छोटे भाई को गला दबाकर हत्या कर देता है ।

इस प्रकार की कहानियां लिखने के अतिरिक्त, बंगाल में जिन दिनों महादुर्भिक्ष पड़ा उस समय जन साधारण की हृदयद्रावक स्थिति को विषय बनाकर और पूंजीपतियों की शोषणपूर्ण नीतियों को केन्द्र में रखकर 'महादान' और 'नमक हराम' जैसी कहानियों की रचना की है । यह एक कटु सत्य है कि बंगाल का वह अकाल प्रकृति के कारण नहीं पड़ा था बल्कि भारत के तत्कालीन अंग्रेज शासकों और भारत के पूंजीपति वर्ग द्वारा मिल कर रचाया गया था । ऐसा नहीं था कि बंगाल

में अनाज की कमी थी, अनाज तो बहुत था मगर वह मण्डारों में था। भूख से व्याकुल साधारण जनता पटापट मर रही थी लेकिन मुनाफ़ाखोरों का वह अनाज़ उनके भंडारों में दामों के बढ़ने का इंतज़ार कर रहा था। इस स्थिति को अपने अन्य समकालीन लेखकों, पत्रकारों के समान ही यशपाल ने देखा और शोषण की इस प्रवृत्ति पर कठोर आघात् भी किया क्योंकि उन्होंने पीड़ित साधारण जनता का दुख-दर्द और दमन देखा और महसूस किया था।

इसी प्रवृत्ति से मिलती-जुलती चीज़ 'करुणा' में दिखती है। राजा-सामन्त जन-सामान्य का निर्ममतापूर्वक शोषण करते हैं ताकि व्यवस्था में उनका पद सुरक्षित रहे। वह सामान्य जनता को शहद की मक्खियों से ज़्यादा नहीं गिनते। यदि शहद खाना है तो उनसे छीनना पड़ेगा क्योंकि इसी व्यवस्था पर तो उनका अस्तित्व है।[1]

मिल-मालिकों और मज़दूरों के बीच के संघर्ष और मज़दूरों से उनकी सहानुभूति हमें 'नई दुनिया', 'डाक्टर' आदि बहुत सी कहानियों में मिलती है। मज़दूरों का अपने अधिकारों के लिए मिल-मालिकों से संघर्ष होता है और 'नई दुनिया' का मज़दूर नेता कुन्दनलाल अपना बलिदान देता है। 'डाक्टर' का डाक्टर भी मज़दूरों की दयनीय अवस्था देखता है और उनमें जागृति लाने का प्रयास करता है, उन्हें एकजुट करता है और इसलिए जेल भी जाता है।

इस तरह की और भी कहानियां हैं जिनमें एक हमदर्द की तरह यशपाल ने निम्न वर्ग की समस्याओं को देखा और उनका चित्रण किया है। अतः यह कहना सही नहीं होगा कि यशपाल के साहित्य में केवल मध्यवर्ग

1- उत्तमी की मां (संग्रह), पृष्ठ-57

का ही चित्रण है । निम्न वर्ग का सजीव, मार्मिक और यथार्थ चित्रण भी इनके यहां मिल जाता है । 'यशपाल की कहानियों को देखने से एक बात की ओर ध्यान जाता है -- वह यह कि प्रेमचन्द के बाद किसी भी दूसरे लेखक ने इतनी बड़ी तादाद में न तो अपने आस-पास के विभिन्न वर्गों, श्रेणियों और संस्कारों के पात्रों के एक जीवन्त और विश्वसनीय संसार की रचना की ----- जितनी कि यशपाल ने ।'[1]

अत: कहना न होगा कि युग-जीवन की ऐसी कोई घटना या स्थिति नहीं जिसे यशपाल के यहां स्थान न मिला हो । मध्यवर्ग, निम्न और उच्चवर्ग के व्यक्तियों को पात्र बनाकर यशपाल ने उनका जीवन्त चित्रण किया है और न सिर्फ चित्रण किया है , उसका विश्लेषण भी किया है ।

यह अवश्य है कि मध्यवर्ग या निम्नमध्यवर्ग के विषय और पात्र उनके कहानी-साहित्य का प्रधान विषय बने हैं । 'सारिका ' में एक समय उन्होंने अपने विषय और पात्रों के बारे में चर्चा करते हुए लिखा था कि 'निम्न मध्यवर्ग का होने के कारण निश्चय ही मुझे इस वर्ग का और इसकी अनुभूतियों का परिचय अधिक है । वही मेरे साहित्य में अधिक प्रतिबिम्बित हुआ है ।'[2]

'साम्राज्यवादी-पूंजीवादी नीतियों, जनता पर होने वाले अत्याचारों, शोषण, समाज के स्वस्थ विकास में बाधक रूढ़ियों-रीतियों आदि के प्रति यशपाल की तीखी प्रतिक्रियाएं व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त हुई हैं ।[3] वह जन-सामान्य के कथाकार हैं और हिन्दी कथा-साहित्य को

1- मधुरेश : सिलसिला , पृष्ठ-156

2- 'सारिका ' सितम्बर 1962, पृष्ठ-20

3- मिश्र, प्रकाशचन्द्र: यशपाल का कथा-साहित्य, पृष्ठ-210

उनकी देन अमूल्य है । चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के शब्दों में कहा जा सकता है, 'यशपाल बासे नहीं पड़ सकते, उनकी रचनाओं में जो प्राण-शक्ति है, वह उन्हें बहुत समय तक जीवित रखेगी ।'[1]

---00000---

1- 'सारिका' दिसम्बर 1964, पृष्ठ-27 ।

ग्रन्थ सूची

सहायक ग्रन्थ-सूची (हिन्दी)

1. अग्रवाल, प्रह्लाद : हिन्दी कहानी : सातवाँ दशक, मैकमिलन दिल्ली -1975 ।

2. अवस्थी, रेखा : प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य, मैकमिलन , नई दिल्ली-1978 ।

3. अवस्थी, देवीशंकर : नई कहानी : संदर्भ और प्रकृति राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-1973 ।

4. अमृतराय : कलम का सिपाही : प्रेमचन्द, हंस प्रकाशन इलाहाबाद - 1972

5. कमलेश्वर : नई कहानी की भूमिका, अक्षर दिल्ली 1978 ।

6. गुप्त, सरोज : यशपाल : व्यक्तित्व और कृतित्व- अनुराग प्रकाशन, अजमेर -1970 ।

7. गौतम, लक्ष्मण दत्त : आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में प्रगति -चेतना कोणार्क प्रकाशन: दिल्ली 1972 ।

8. घोष, श्याम सुन्दर : भारतीय मध्यवर्ग, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1972 ।

9. ताराचन्द : भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, भाग -2 : सूचना और प्रसार मंत्रालय, नई दिल्ली-1969 ।

10. तिवारी सुरेश चन्द्र : यशपाल और हिन्दी कथा साहित्य : 1956 सरस्वती प्रेस, बनारस

11. देसाई, ए० आर० : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि

12. धींगड़ा, सुरेश : हिन्दी कहानी: दो दशक

13. प्रसाद, सरोज : प्रेमचन्द के उपन्यासों में समसामयिक परिस्थितियों का प्रतिफलन- रचना प्रकाशन, इलाहाबाद-1972 ।

14. प्रेमचन्द : कुछ : विचार-सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद 1973 ।

15. प्रेमचन्द : विविध प्रसंग - हंस प्रकाशन, इलाहाबाद 1962 ।

16. मार्क्स, कार्ल : कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र

17. लेनिन, व्ला०इ० : संकलित रचनाएं- प्रगति प्रकाशन, मास्को-

18. मधुरेश : क्रांतिकारी यशपाल : एक समर्पित व्यक्तित्व

19. मधुरेश : यशपाल के पत्र, मैकमिलन, दिल्ली — 1977

20. मधुरेश : सिलसिला, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली — 1979

21. मदान, इन्द्रनाथ : हिन्दी कहानी : एक नई दृष्टि- संभावना प्रकाशन , हापुड़, 1978 ।

22. मदान, इन्द्रनाथ : हिन्दी कहानी : अपनी ज़ुबानी- राजकमल प्रकाशन दिल्ली, 1968 ।

23. मिश्र, प्रकाशचन्द्र : यशपाल का कथा-साहित्य, मैकमिलन, दिल्ली 1978

24. मिश्र, पारसनाथ : मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद : 1972 ।

25. यशपाल : दादा कामरेड (भूमिका) विप्लव प्रकाशन, लखनऊ, 1965 ।

26. यशपाल : बात-बात में बात, विप्लव प्रकाशन, लखनऊ - 1959 ।

27. यशपाल : राह बीती - विप्लव प्रकाशन, लखनऊ- 1966 ।

28. यादव, राजेन्द्र : कहानी : स्वरूप और संवेदना- नेशनल पब्लिशिंग हाउस - 1968 ।

29. यादव, राजेन्द्र : एक दुनिया समानान्तर : अक्षर प्रकाशन 1970 ।

30. राय, विवेकी : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य और ग्राम्य जीवन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1974 ।

31. राकेश, मोहन : साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-1975 ।

32. शर्मा, रामविलास : प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं

33. शर्मा, रामविलास : कथा-विवेचना और गद्य-शिल्प

34. (सं०) सीमा, सावित्री चन्द्र ‖ हिन्दी कहानी: एक मूल्यांकन
अग्रवाल, सागर
माण्डव, प्रदीप

35. सिंह कुमारी अनु : यशपाल की कहानी कला - नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली - 1965

36. सिंह, मंजुला : हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग- वादर्श बुक डिपो, दिल्ली-1971 ।

37. सिंह, नामवर : हिन्दी प्रतिनिधि कहानियाँ ।

38. चन्द्रा, सतीश : उत्तर मुगलकालीन भारत

पत्रिकाएं

1. नई कहानियाँ
2. सारिका
3. साप्ताहिक हिन्दुस्तान

सहायक ग्रंथ (अंग्रेजी)

1. मित्र, बी०डी० : दि एशियन मिडिल क्लासेज
2. ग्रैटन, आर०एच० : दि इंगलिश मिडिल क्लासेज
3. खान, नासिर अहमद : मिडिल क्लासेज इन एशिया
4. सिंह, दलबीर : बरदन मिडिल क्लास-क्लास-कन्टर्स
5. हुमायूं कबीर : इण्डियन हैरिटेज

शब्द कोश

1. हिन्दी साहित्य कोश
2. ट्वेन्टियथ सेंचुरी (वेब्स्टर्स डिक्शनरी)
3. वाक्सफोर्ड इलेस्ट्रेटिड डिक्शनरी
4. वेब्सटर न्यू ट्वेन्टियथ सेंचुरी डिक्शनरी